कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास
को समर्पित

वर्ष 56 अंक : 9 जुलाई 2010 मूल्य : 10 रुपये

खेती का बदलता स्वरूप

अब नेट उपलब्ध

वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

भारत 2010

मूल्य: 345 रुपये

देश के विकास की
विश्वसनीय और अद्यतन जानकारी के लिए

* अर्थव्यवस्था
* विज्ञान और तकनीक
* सामाजिक विकास
* राजनीति
* शिक्षा
* कला और संस्कृति

अपनी प्रति यहा से खरीदें :

हमारे विक्रय केंद्र: • **नयी दिल्ली** (फोन 24365610, 24367260) • **दिल्ली** (फोन 23890205) • **कोलकाता** (फोन 22488030) • **नवी मुम्बई** (फोन 27570686) • **चेन्नई** (फोन 24917673) • **तिरुअनंतपुरम** (फोन 2330650) • **हैदराबाद** (फोन 24605383) • **बंगलुरू** (फोन 25537244) • **पटना** (फोन 2683407) • **लखनऊ** (फोन 2325455) • **गुवाहाटी** (फोन 26656090) • **अहमदाबाद** (फोन 26588669)

प्रतियां प्रमुख पुस्तक केंद्रों में भी उपलब्ध हैं

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:
व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग,
सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली
फोन. 011–24365610, 24367260, फैक्स: 24365609

ईमेल: dpd@mail.nic.in
dpd@sb.nic.in
वेबसाइट: www.publicationsdivision.nic.in

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

कुरुक्षेत्र

वर्ष : 56 ★ मासिक अंक : 9 ★ पृष्ठ : 48 ★ आषाढ़–श्रावण 1932 ★ जूलाई 2010

प्रधान संपादक
नीता प्रसाद
वरिष्ठ संपादक
कैलाश चन्द मीना
संपादक
ललिता खुराना
संपादकीय पत्र–व्यवहार
वरिष्ठ संपादक,
कमरा नं. 655, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110 011
दूरभाष : 23061014, 23061952
फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com
संयुक्त निदेशक
जे.के. चन्द्रा
व्यापार प्रबंधक
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516
ई–मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in
आवरण एवं सज्जा
संजीव सिंह और रजनी दुबे

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

इस अंक में

जैविक खेती: आधुनिक समय की मांग — जितेन्द्र द्विवेदी — 3

खेती का स्वरूप बदलती खेत तलाई योजना — घनश्याम वर्मा — 9

कृषि विकास की गाथा बयां करती क्रान्तियां — डॉ. जितेन्द्र सिंह एवं डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह — 13

कम पानी की सिंचाई पद्धतियां अधिक कारगर — डॉ. डी.डी. ओझा — 18

बदलते समय के साथ बदलती खेती — लोकेश कुमार — 22

विकास में सहायक अनुबन्धित खेती — डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह एवं डॉ. लोकेन्द्र सिंह — 30

मनरेगा-ग्रामीण युवाओं के लिए आशा की किरण — ग्रामीण भारत के सौजन्य से — 35

लाभदायक है बासमती की खेती — डॉ. यशवीर सिंह शिवे — 36

रोगनिवारक गुणों से भरपूर गूलर — जगनारायण — 42

पथरीली जमीन पर करिश्मा कर दिखाया एक किसान ने — वीरेन्द्र परिहार — 45

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

संपादकीय

कृषि के बदलते स्वरूप से हमारे गांव भी तेजी से बदले हैं । दरअसल अब कृषि एक समूचा विज्ञान एवं व्यवसाय बन गई है । परंपरागत ढंग से खेती करने वाले किसान भी अब जानते तथा मानते हैं कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने से ही कृषि उत्पादन बढ़ा, उन्नति हुई और आगे भी होगी ।

साठ के दशक में हम अपना पेट भरने के लिए विदेशी अनाज की तरफ ताकते थे लेकिन आज हमारे देश में अन्न के भरपूर भंडार हैं । आजादी के बाद भारतीय कृषि में अनेक सुधारात्मक परिवर्तन हुए हैं । खासतौर से हरितक्रांति के बाद हालात बदले । बढ़िया बीज, खाद, दवाएं, सिंचाई के साधन व कृषि तकनीक सब बढ़े । अतः खेतों में हरियाली एवं गांवों में खुशहाली आई है ।

दरअसल कृषि उत्पादन में वृद्धि हमारे समग्र ग्राम्य विकास की गति को तेज करती है। वैज्ञानिक ढंग से उन्नत खेती के परिणामस्वरूप देश के कई राज्यों में समृद्धि की लहर साफ दिखाई देती है । पक्के मकान, बढ़िया सड़कें, ट्यूबवैल, ट्रैक्टर तथा खुशहाली की आभा से चमकते–दमकते चेहरे ग्रामीण पुनर्निर्माण की नई गाथा कहते दिखाई देते हैं ।

जहां हरितक्रांति के जरिए देश के खाद्यान्न उत्पादन में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ वहीं श्वेतक्रांति ने देश को दुग्ध उत्पादन में दुनिया का सर्वाधिक दूध उत्पादन करने वाला देश बना दिया । तत्पश्चात देश को खाद्य तेलों में आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनुसंधान एवं विकास की नए सिरे से रणनीति तैयार की गई जिसे पीली क्रांति के नाम से जाना गया । इसके बाद देश में झींगा उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से गुलाबी क्रांति का आगाज हुआ । परिणामस्वरूप आज न केवल घरेलू बाजार बल्कि विदेशी बाजार में भी झींगा की मांग काफी बढ़ी है और देश विश्व के सबसे बड़े झींगा निर्यातक राष्ट्र के रूप में जाना जाता है।

वर्तमान में जलसंकट के मद्देनजर वैज्ञानिकों ने निरंतर अनुसंधान द्वारा ऐसी सिंचाई पद्धतियां विकसित की हैं जिनसे पानी तथा ऊर्जा की न केवल बचत होती है बल्कि कृषि उपज भी अधिक प्राप्त होती है । इनमें से फव्वारा और बूंद–बूंद पद्धतियों को बढ़ावा देने के लिए सरकार इनकी खरीद पर 50 से 75 प्रतिशत तक अनुदान भी देती है । आज जरूरत इन सिंचाई पद्धतियों को और बढ़ावा देने की है ।

विकास की तमाम ऊंचाईयों को छूने के बावजूद आज भी कृषि एक आम किसान के लिए घाटे का सौदा बनी हुई है जिसकी वजह बढ़ती उत्पादन लागत, फसल का बेहतर मूल्य नहीं मिल पाना और प्राकृतिक आपदाएं हैं । कभी बाढ़ तो कभी सूखा किसान भाई की सालभर की मेहनत और सपनों को चूर–चूर कर देते हैं । प्रकृति के कहर को रोकना तो इंसान के बूते से बाहर है लेकिन अन्य कारणों से जरूर उबरा जा सकता है । आज जरूरत कृषि में उत्पादन लागत घटाने, खाद, बीज, दवा, पानी एवं श्रम आदि के अपव्यय को रोकने तथा किसानों को उनकी फसल का उचित मूल्य दिलाने की पर्याप्त व्यवस्था करने की है तभी खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ती जरूरतों के मुताबिक बढ़ाना संभव हो सकता है ।

जैविक खेती: आधुनिक समय की मांग

जितेन्द्र द्विवेदी

आज रसायनिक प्रदूषण से तंग आकर देश या विदेश के वैज्ञानिक जैविक खेती करने को प्रोत्साहित कर रहे हैं। इस पद्धति के बारे में पुनः नए सिरे से कृषकों में जागृति तथा विश्वास बढ़ रहा है। जैविक खेती से उत्पाद की गुणवत्ता ही नहीं बढ़ी है बल्कि खेत, खलिहान तथा उपभोक्ताओं में उन्नत सामंजस्य स्थापित हुआ है।

भारत में कृषि की घटती जोत, संसाधनों की कमी, लगातार कम होती कार्यकुशलता और कृषि की बढ़ती लागत तथा साथ ही उर्वरक व कीटनाशकों के पर्यावरण पर बढ़ते कुप्रभाव को रोकने में निःसंदेह जैविक खेती एक वरदान साबित हो सकती है। जैविक खेती का सीधा सम्बन्ध जैविक खाद से है या यह कहें कि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आज जबकि दूसरी हरित क्रान्ति की चर्चा जोरों पर है, वहीं हमें कृषि उत्पादन में मंदी के कारणों पर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा और कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु जल प्रबन्धन, मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखने और फसलों को बीमारी से बचाने पर जोर देना होगा। यह कहना गलत न होगा कि जैविक खेती से तीनों समस्याओं का प्रभावी ढंग से समाधान किया जा सकता है। इसलिए रसायनिक उर्वरकों के उपयोग को हतोत्साहित करते हुए जैविक खेती को प्रोत्साहन देना समय की मांग है।

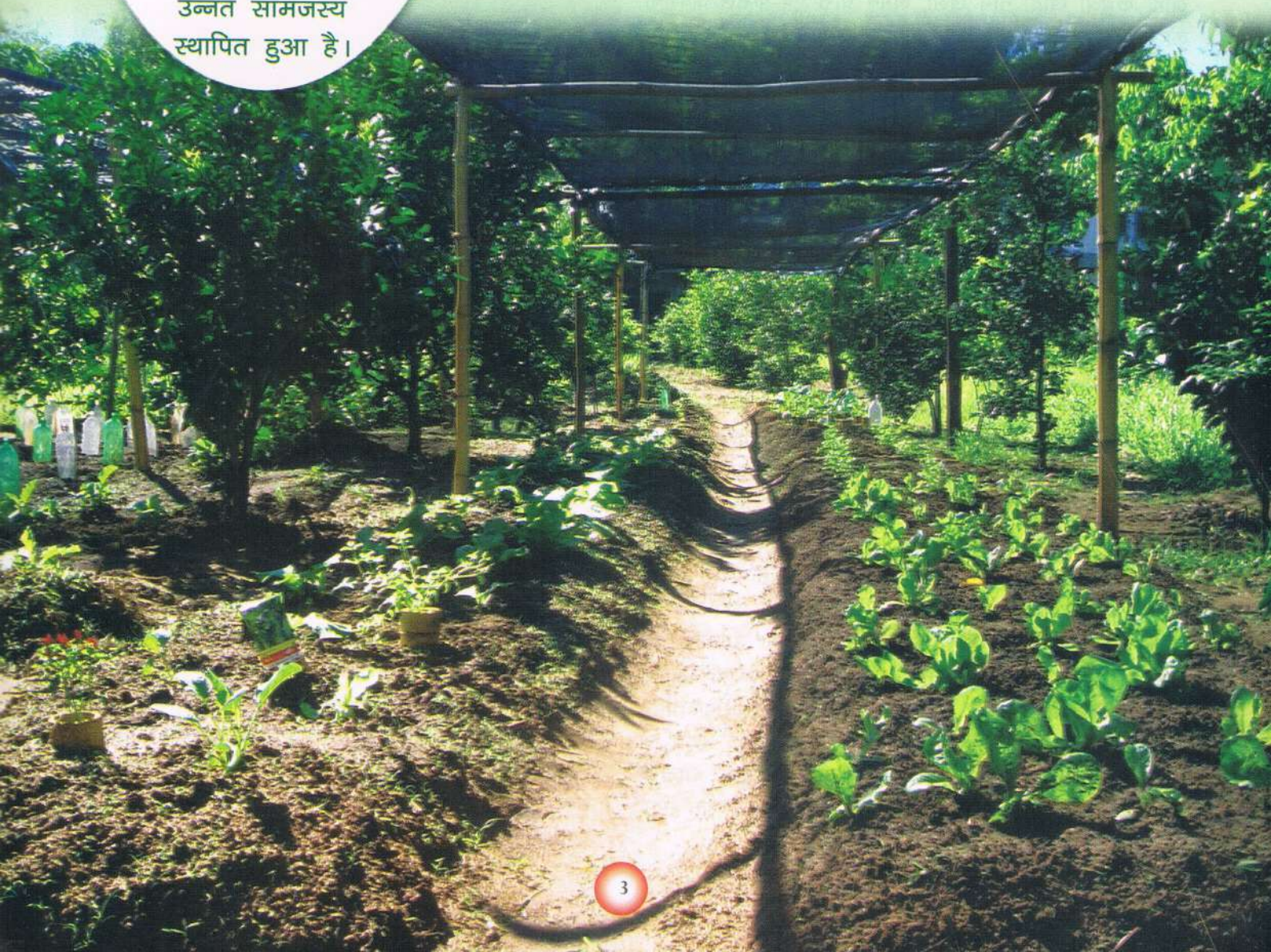

यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है कि 60वें दशक की हरित क्रान्ति ने यद्यपि देश को खाद्यान्न की दिशा में आत्मनिर्भर बनाया लेकिन इसके दूसरे पहलू पर यदि गौर करें तो यह भी वास्तविकता है कि खेती में अंधाधुंध उर्वरकों के उपयोग से जल स्तर में गिरावट के साथ मृदा की उर्वरता भी प्रभावित हुई है और एक समय बाद खाद्यान्न उत्पादन न केवल स्थिर हो गया बल्कि प्रदूषण में भी बढ़ोतरी हुई है और स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा पैदा हुआ है जिससे सोना उगलने वाली धरती मरुस्थल का रूप धारण करती नजर आ रही है। मिट्टी में सैकड़ों किस्म के जीव–जन्तु एवं जीवाणु होते हैं जो खेती के लिए हानिकारक कीटों को खा जाते हैं। फलतः उत्पादन प्रभावित होता है। इसलिए समय की मांग है कि 60 के दशक की पहली क्रान्ति के अनुभवों से सबक लेते हुए हमें दूसरी हरित क्रान्ति में रसायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल में सावधानी बरतते हुए जैविक खेती पर ध्यान देना चाहिए।

जैविक खेती में हम कम्पोस्ट खाद के अलावा नाडेप, कम्पोस्ट खाद, केंचुआ खाद, नीम खली, लेमन ग्रास एवं फसल अवशेषों को शामिल करते हैं। जैविक खाद के उपयोग से न केवल मृदा की उर्वरता बढ़ती है बल्कि उसमें नमी की वजह से काफी हद तक सूखे की समस्या से भी निजात मिलती है। जैविक खाद के प्रयोग से भूजल धारण क्षमता बढ़ती है। इसके साथ ही जैविक कीटनाशक से मित्र कीट भी संरक्षित होते हैं। इस प्रकार घटते भूजल स्तर के लिए जैविक खेती एक वरदान साबित होगी। एक अनुमान के अनुसार किसान अपनी उत्पादित फसल का 25–40 प्रतिशत ही उपयोग कर पाते हैं। भारत में प्रतिवर्ष 600 मिलियन टन कृषि अवशेष पैदा होता है, इसमें से अधिकांश अवशेषों को किसान अगली फसल हेतु खेत तैयार करने के लिए खेत में ही जला देते हैं जबकि इसका उपयोग जैविक खाद को तैयार करने के लिए आसानी से किया जा सकता है।

भारतीय किसान परम्परागत रूप से खेती में स्थानीय तकनीकों व संसाधनों का उपयोग करते थे जिसमें स्थानीय बीज, वर्षा आधारित खेती व जैविक खाद थे जिसे सड़े–गले पत्ते व घासों का उपयोग कर बनाने में भारतीय किसान माहिर थे। पारम्परिक खाद के प्रयोग से फसल अधिक गुणवत्ता वाली होती थी। साथ ही आसपास का वातावरण साफ व स्वच्छ रहता था। एक दो दशक पहले तक आम काश्तकार खेती से इतना उत्पादन कर लेता था कि परिवार का गुजर–बसर हो जाता था और अपनी आर्थिक जरूरतें भी पूरी हो जाती थीं लेकिन आधुनिकता व बाजारवाद की आंधी ने किसानों का रुख जैविक खाद से रसायनिक खादों की तरफ मोड़ दिया। रसायनिक खाद, बीज व कीटनाशकों के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई लेकिन एक सीमा

के बाद उस पर बढ़ती लागत से किसानों पर आर्थिक दबाव पड़ने लगा।

आजकल जैविक खेती जिसे आर्गेनिक एग्रीकल्चर भी कहते हैं, आधुनिक कृषि पद्धति के रूप में प्रचलित करने का प्रयास अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जा रहा है। परन्तु यह हमारे देश की प्राचीन कृषि पद्धति रही है जिसे वैदिक कृषि भी कहा गया है। कृषक प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए वैज्ञानिक तथ्य को पूर्णरुपेण समझते हुए कृषि कार्य में संलग्न थे और इन्हें इच्छित सुफलदायी परिणाम प्राप्त होता था। मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखते हुए मानव कल्याण के साथ पर्यावरण संतुलन स्थापित रहता था। यह खेत, खलिहान, श्रमिक एवं उपभोक्ताओं के लिए किसी भी प्रकार से हानिकर प्रभाव से रहित थे।

हरित क्रान्ति में संकर बीज किस्मों, रसायनिक उर्वरकों, नई तकनीक व मशीनों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया गया। रसायनिक, उर्वरकों जैसे यूरिया, डी.ए.पी., कीटाणुनाशक तथा खरपतवार नाशक दवा का अत्यधिक उपयोग करने से मिट्टी की स्वाभाविक

उर्वराशक्ति में कमी हुई तथा बड़ी मात्रा में कृषि भूमि बंजर हो गई जिसके परिणामस्वरूप जैविक खेती को अपनाने का प्रचलन आरम्भ हुआ और आज अधिकांश देश इसके अनुयायी बन गए हैं। हमारे परम्परागत बीज लुप्त हो गए तथा संकर बीजों पर निर्भरता बढ़ गई। उपज तो अच्छी प्राप्त हुई लेकिन रसायनों का दुष्प्रभाव मनुष्यों और जानवरों पर जब देखा गया तो किसानों एवं कृषि वैज्ञानिकों का विचार पुनः बदला और पुराने पथ पर जाने को मजबूर किया। खाद्य पदार्थों में कैडमियम तथा शीशा एवं अन्य अवांछित तत्वों की मात्रा अनुपात से अधिक पाई गई जिसे कैंसर जैसे रोगों का मुख्य कारक माना गया। संचित जल में भी हानिकारक तत्वों की मात्रा अधिक पाई गई। गांवों, कस्बों का जलाशय इन रसायनों के द्वारा प्रदूषित हुआ जिसने पालतू जानवरों के साथ जलीय पौधों एवं मछलियों को प्रभावित करते हुए फूडचेन के माध्यम से मनुष्यों में पहुंचकर अनेक व्याधियों को जन्म दिया।

आज रसायनिक प्रदूषण से तंग आकर देश या विदेश के वैज्ञानिक जैविक खेती करने को प्रोत्साहित कर रहे हैं। इस पद्धति के बारे में पुनः नए सिरे से कृषकों में जागृति तथा विश्वास बढ़ रहा है। जैविक खेती से उत्पाद की गुणवत्ता ही नहीं बल्कि खेत, खलिहान तथा उपभोक्ताओं में उन्नत सामंजस्य स्थापित हुआ है। हम भारत के किसान एवं कृषि वैज्ञानिकों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने त्याग, तपस्या तथा अथक परिश्रम करके हमारे स्वास्थ्य एवं समृद्धि हेतु उन्नत उत्पाद अनमोल उपहार के रूप में प्रस्तुत किए हैं। आज जैविक खेती का परिचालन 130 देशों में लगभग 35 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में हो रहा है। जैविक खेती के तीन मुख्य आधार हैं। पहला–मिश्रित फसल, दूसरा–फसल चक्र और तीसरा– जैव उर्वरक का उपयोग। मिश्रित फसल लेने से कम क्षेत्रफल में हम अधिक उपज प्राप्त कर लेते हैं। मिट्टी में मौजूद विभिन्न तत्वों का आनुपातिक उपयोग विभिन्न फसलों में करते हैं। फलतः मिट्टी की प्राकृतिक गुणवत्ता बरकरार रहती है। फसली पौधे जितनी मात्रा में कार्बनिक या अकार्बनिक तत्व ग्रहण करते हैं उसे बायोजियोकेमिकल्स चक्र के अन्तर्गत लौटा देते हैं। खरपतवारों को उगने का मौका नहीं मिल पाता। मगध प्रक्षेत्तर में धान के खेत के मेड़ पर अरहर उपजाने की परंपरा रही है। पुनः अरहर के खेत में पंक्तिबद्ध मूंगफली, मूंग, उड़द, सोयाबीन या लोबिया लगाना सुविधाजनक होता है। इस प्रकार सहफसली खेती में उचित प्रजाति का चुनाव एवं सिंचाई प्रबन्धन पर ध्यान देना आवश्यक है।

जैविक खेती का दूसरा आधार फसल चक्र है। एक ही फसल लगातार उगाने से मिट्टी में मौजूद लवणों का संतुलन बिगड़ जाता है। अतः फसल चक्र का अनुपालन करने से पौधों को भी उचित पोषण प्राप्त होता हैं। साथ ही मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है। खरपतवार भी न्यूनतम उग पाते हैं। पादप रोगों को भी फैलाव का मौका नहीं मिलता। कीटों की संख्या में ह्रास देखा गया है। खेती से प्राप्त अतिरिक्त उत्पाद को पुनः सड़ाकर उसी मिट्टी में मिला देने से किसानों की उर्वरक, कीटनाशक तथा खरपतवारनाशक रसायन पर व्यय राशि के साथ–साथ श्रमशक्ति की भी बचत होती है। रसायनिक उर्वरकों का आयात करने में विदेशी मुद्रा की खपत कम होती है।

हम कृषि उत्पाद के अवशिष्ट पदार्थ (जैसे–पुआल, भूसी) बायोगैस संयंत्र का अवशिष्ट एवं केंचुआ खाद आदि का उपयोग करके मिट्टी में मौजूद विभिन्न तत्वों की आनुपातिक मात्रा सामान्य बनाए रख सकते हैं। खेत–खलिहानों के उत्पाद को ही उर्वरक, कीटाणुनाशक या खरपतवारनाशक या फफूंदीनाशक के रूप में इस्तेमाल करके आर्थिक बोझ को कम करते हुए प्राकृतिक संतुलन स्थापित कर सकते हैं। विभिन्न प्रकार के रसायनों के अत्यधिक इस्तेमाल से आन्त्रशोध, एलर्जी, हेपेटाइटिस, हृदय रोग एवं कैंसर होने की संभावना बढ़ी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के सर्वे के अनुसार 20+25 हजार व्यक्ति प्रतिवर्ष इन रसायनों के प्रभाव से अकाल मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

जैविक खाद का फसल उत्पादन में महत्व

गोरखपुर एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप के अध्यक्ष एवं राज्य कृषि सलाहकार परिषद के सदस्य डा. शिराज वजीह का कहना है कि भारत की अर्थव्यवस्था का एक बड़ा भाग कृषि उत्पादन पर निर्भर करता है। यह एक दुखद पहलू है कि हमारे यहां कुछ वर्षों से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रसायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध व अनियंत्रित प्रयोग किया जा रहा है, जिसके कारण मृदा स्वास्थ्य और मृदा में उपलब्ध लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में भारी ह्रास हुआ है। रसायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से भूमि की उपजाऊ शाक्ति में कमी तो आई ही है, साथ ही उसके अन्य दुष्प्रभाव जैसे मृदा, जल तथा पर्यावरण प्रदूषण आदि भी सामने आने शुरू हो गए हैं। मृदा को स्वस्थ बनाए रखने, लक्षित उत्पादन प्राप्त करने के लिए, उत्पादन लागत कम करने हेतु व पर्यावरण और स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि रसायनिक उर्वरकों जैसे कीमती निवेश के प्रयोग को एक हद तक कम करके जैविक खादों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

जैविक खादों का मृदा उर्वरता और फसल उत्पादन में महत्व

- जैविक खादों के प्रयोग से मृदा का जैविक स्तर बढ़ता है, जिससे लाभकारी जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती है और मृदा काफी उपजाऊ बनी रहती है।
- जैविक खाद पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक खनिज पदार्थ

जैविक खेती से लिखी सफलता की कहानी

जिला गोरखपुर ब्लॉक खोराबार ग्राम झंगहा के श्री शिव वचन यादव अपनी पूरी खेती जैविक विधि से करते है एवं अपने घर अथवा खेत में उपलब्ध संसाधनों (गौमूत्र, लहसुन, सुर्ती, नीम आदि) द्वारा कीटनाशकों का निर्माण व उनका नियमित प्रयोग अपने खेतों में करते हैं जिससे फसल स्वस्थ रहे। श्री शिव वचन यादव अपने खेत में किसी भी तरह के रसायनिक कीटनाशक या रसायनिक खाद का प्रयोग बिल्कुल नहीं करते हैं। इनका कहना है कि यदि भूमिशोधन व बीज अथवा पौधशोधन की क्रिया जैविक विधि से की जाए तो कीट व रोग के लगने की संभावनाएं स्वयं ही कम हो जाएंगी।

इनके साथ–साथ भूमि की उर्वराशक्ति व खाद्य सुरक्षा हेतु फसल पद्धति व मिश्रित फसलों के उत्पादन के महत्व को अच्छी तरह से शिव वचन जी समझते हैं। इनका कहना है कि किसानों को फसलों के साथ बागवानी व छोटे जानवरों को समन्वित करना होगा जिससे यह सभी तंत्र एक–दूसरे पर निर्भर होकर उत्पादन में वृद्धि भी करते रहे और नुकसान की संभावनाएं भी कम होती जाए। आज की खेती में खतरे बहुत ज्यादा हैं जिसके कारण एकल नकदी फसल व उसमें लगने वाली बड़ी लागत है। ऐसे खतरों से बचने का आसान रास्ता है समन्वित खेती। प्राचीन समय में खेती के अधिकाधिक फायदेमंद होने की एक सबसे बड़ी वजह जानवर थे जो खेत का हिस्सा होते थे, खेती पूरी तरह उन पर निर्भर करती थी। आज उसके महत्व को समझना होगा। अपनी आर्थिक स्थिति व आवश्यकता के अनुसार किसान छोटे या बड़े जानवर रखकर उस कमी को पूरा कर सकते हैं।

बीज उत्पादन व भंडारण

श्री यादव बताते है कि मैं अपने खेतों में ही परम्परागत बीजों का उत्पादन करता हूं जिससे मेरी बाजार पर निर्भरता समाप्त हो सके और आगामी तीन साल तक हमें खेती के लिए बीज न खरीदना पड़े। साथ ही इनके भण्डारण की उचित व्यवस्था भी देशी तरीके से करता हूं। गेहूं व धान के साथ–साथ साग–सब्जी व अन्य बीजों को भी संरक्षित कर रहा हूं जिससे बीजों पर लगने वाली लागत कम अथवा समाप्त हो जाए और उत्पादन में गुणवत्ता बनी रहे। खेती व अच्छे उत्पादन में गुणवत्ता खेती व अच्छे बीज पर ही होता है। उत्पादन का सारा दारोमदार सतर्कता की आवश्यकता अतः इनके चयन में बहुत है।

खाद निर्माण

विभिन्न प्रकार की जैविक खादों, कम्पोस्ट नाडेप, केंचुए की खाद, सी. पी.पी. आदि में से अपने उपलब्ध संसाधनों व आवश्यकताओं के अनुसार खाद स्वयं तैयार करता हूं जिससे भरपूर पौष्टिकता बिना किसी विशेष लागत के जमीन को दी जा सके। यह आवश्यक नहीं है कि सभी प्रकार की खादों का एक साथ निर्माण किया जाए, यह खेत के आकार और उसकी पोषण सम्बन्धी जरूरतों पर निर्भर होगा कि कौन–सी खाद उपयुक्त होगी। साथ ही लगाई जाने वाली फसलों व उपलब्ध जमीन के ऊपर भी निर्भर होगा।''

जैविक कीटनाशक

घर अथवा खेत में उपलब्ध संसाधनों (गौमूत्र, लहसुन, सुर्ती, नीम आदि) द्वारा कीटनाशकों का निर्माण व उनका नियमित प्रयोग करता हूं। अपने खेतों में घर पर निर्मित कीटनाशक ही प्रयोग करता हूं जिससे फसल स्वस्थ रहे। यदि भूमिशोधन व बीज अथवा पौधशोधन की क्रिया समुचित रूप से की जाए तो कीट व रोग के लगने की संभावनाएं स्वयं ही कम हो जाएंगी।

आज मैं गोरखपुर एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप द्वारा संचालित किसान स्कूल का संचालक एवं सरकार द्वारा चलाए जा रहे आत्मा प्रोग्राम का चयनित किसान हूं। क्षेत्र में मेरी पहचान न केवल एक प्रयोगधर्मी किसान की बनी, बल्कि मैं मास्टर ट्रेनर के रूप में जाना जाने लगा। किसान स्कूल का संचालक बना और उसके बाद एक प्रशिक्षक के रूप में उभरकर सामने आया हूं। अपने जीवन की उपलब्धि को मैंने हमेशा बड़े सकारात्मक नजरिये से देखा और चाहा कि हमारे क्षेत्र के किसानों की आय बढ़े, उनकी खेती टिकाऊ हो, उनका उत्पाद टिकाऊ हो और कुल मिलाकर किसानों का जीवन टिकाऊ हो।

प्रदान कराते हैं, जो मृदा में मौजूद सूक्ष्म जीवों के द्वारा पौधों को मिलते हैं, जिससे पौधे स्वस्थ बनते हैं और उत्पादन बढ़ता है।

- रसायनिक खादों के मुकाबले जैविक खाद सस्ते, टिकाऊ बनाने में आसान होते हैं। इनके प्रयोग से मृदा में ह्यूमस की बढ़ोतरी होती है व मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है।
- पौध वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश तथा काफी मात्रा में गौण पोषक तत्वों की पूर्ति जैविक खादों के प्रयोग से ही हो जाती है।
- कीटों, बीमारियों तथा खरपतवारों का नियंत्रण काफी हद तक फसल चक्र, कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं, प्रतिरोध किस्मों और जैव उत्पादों द्वारा ही कर लिया जाता है।
- जैविक खादें सड़ने पर कार्बनिक अम्ल देती हैं जो भूमि के अघुलनशील तत्वों को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर देती हैं, जिससे मृदा का पी.एच. मान 7 से कम हो जाता है।

जैविक व हरी खादों में औसत पोषक तत्व प्रतिशत में

जैविक खाद	पोषक तत्व (प्रतिशत)		
	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
फार्मयार्ड खाद	0.80	0.41	0.74
कम्पोस्ट खाद	1.24	1.92	1.07
वर्मी कम्पोस्ट	1.60	2.20	0.67
धान पुआल की खाद	1.59	1.34	1.37
गेहूं भूसा की खाद	2.90	2.05	0.90
प्रेसमड	2.73	1.81	1.31
जलकुम्भी	2.0	1.0	2.30
मुर्गी खाद	2.87	2.93	2.35
हरी खाद			
सनई	0.43	0.12	0.5
ढैंचा	0.5	0.10	0.50
बिनौला	3.9	1.8	1.6
महुवा केक	2.5	0.8	1.8
नीम केक	5.2	1.0	1.4
मूंगफली की खली	7.4	1.5	1.3
सनफ्लावर	7.9	2.2	1.9
तिल केक	6.2	2.0	2.2
सरसों की खली	5.15	1.8	1.2

अतः इससे सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है। यह तत्व फसल उत्पादन में आवश्यक हैं।

- इन खादों के प्रयोग से पोषक तत्व पौधों को काफी समय तक मिलते हैं। यह खादें अपना अवशिष्ट गुण मृदा में छोड़ती हैं। अतः एक फसल में इन खादों के प्रयोग से दूसरी फसल को लाभ मिलता है। इससे मृदा उर्वरता का संतुलन ठीक रहता है।

जैविक खेती में नीम का महत्व

नीम के पूर्ण विकसित पौधे से 30–100 किलोग्राम तक फल प्राप्त होता है। प्राप्त बीज से 20 प्रतिशत तेल एवं 80 प्रतिशत नीम खली प्राप्त होती है। नीम के तेल में 100 से अधिक जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं तथा इसके द्वारा प्राप्त यौगिकों से 200 से अधिक कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है। नीम के तेल में पाए जाने वाला कड़ुवापन निम्बीडिन के कारण होता है। नीम से निर्मित कीटनाशकों के प्रयोग से लक्षित कीटों में प्रतिरोधी क्षमता का विकास नहीं होता है। नीम के विभिन्न भागों के कुछ प्रमुख प्रयोग निम्नलिखित हैं–

नीम तेल कीटनाशक के रूप में

नीम के तेल का कीटनाशक के रूप में प्रयोग करने से कीटों के जीवन चक्र में व्यवधान आता है। नीम तेल में पाये जाने वाले सक्रिय तत्व कीटों में कायान्तरण के लिए उत्तरदायी हार्मोन के स्राव को रोकता है जिससे कीड़े की अगली अवस्था नहीं आ पाती। फलतः उनका जीवन चक्र रुक जाता है, परिणामस्वरूप कीड़ों की संख्या में वृद्धि नहीं हो पाती है। नीम तेल में पाये जाने वाले एजैडिरेक्टिन, सेलेमिन एवं मेलेनेन्ड्रीयोल के कारण कीटों के आमाशय में एंटीपेस्टिलिसिस तरंगें उत्पन्न होती हैं जिसके कारण कीटों में उल्टी (वमन) जैसी स्थिति का आभास होता है। अतः कीट पौधों को नहीं खाते, नीम के तेल का सबसे अधिक प्रभाव कुतरने, चबाने तथा चूसने वाले कीटों पर पड़ता है। परन्तु यू.एस.ई.पी.ए. के अध्ययन के अनुसार नीम तेल या नीम उत्पादों का पौधों, जन्तुओं, स्तनधारियों एवं पक्षियों आदि पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

कीटनाशक बनाने की विधि

5 ग्राम डिटर्जेन्ट पाउडर को 1 लीटर पानी में अच्छी तरह घोल लें। अब इस एक लीटर घोल में 50 मिलीलीटर नीम तेल मिलाकर अच्छी तरह मथकर घोल बना लें। तैयार घोल को 9 लीटर पानी में मिला दें। इस प्रकार 10 लीटर कीटनाशक तैयार हो जाएगा। जिसको 8 घण्टे के अन्दर सुबह या शाम पौधों के सम्पूर्ण भाग पर स्प्रे कर दें। जाड़े में 10 दिन एवं गर्मी तथा वर्षा के समय 5 दिन के अन्तराल पर पुनः छिड़काव करें।

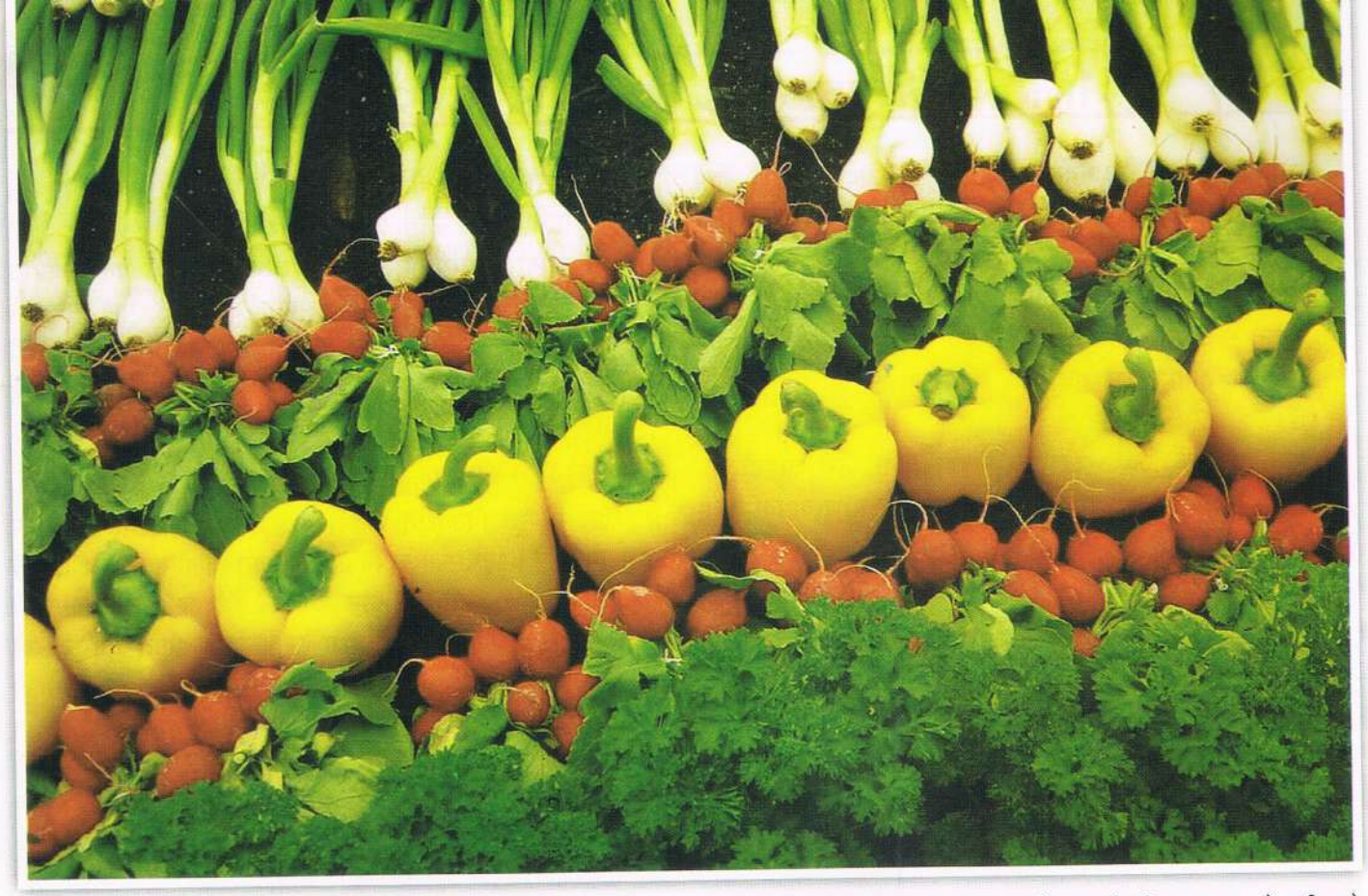

नीम खलीः– नीम की खली में एजडिरेक्टीन 600 पी.पी.एस., नाइट्रोजन 2–5 प्रतिशत, फास्फोरस 0.5 से 0.1 प्रतिशत, पोटेशियम 1.67 प्रतिशत, कैल्शियम 0.99 प्रतिशत तथा मैग्निशियम 0.75 प्रतिशत पाया जाता है। इस प्रकार इसके उपयोग से पौधों को उर्वरक तो प्राप्त होता ही है साथ–साथ एजाडिरेक्टीन पाए जाने के कारण मृदा में निमेटोड, सफेद चींटी, जीवाणु–विषाणु, हानिकारक फफूंद आदि का भी नियंत्रण होता है। इसके प्रयोग से भूमि में नाइट्रोजन उपयोग की क्षमता भी बढ़ती है।

नीम की पत्ती का कीटनाशक के रूप में प्रयोगः– नीम की पत्ती का भी कीटनाशक बनाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इसे बनाने के लिए 10 किलोग्राम गोमूत्र को एक मिट्टी के बर्तन में रखे तथा उसमें 2.5 किलोग्राम नीम की पत्ती डाले और इसे 15 दिन तक सड़ने दें। 15 दिन पश्चात् सूती कपड़े से छानकर पत्ती को अलग कर लें तथा प्राप्त घोल को 50 लीटर पानी में मिलाकर सुबह या शाम पौधों पर छिड़काव करें। छिड़काव सम्पूर्ण पौधे पर 10–10 दिन के अन्तराल पर करें।

नीम गिरी का सतः– नीम गिरी का सत नीम के बीज से बनाया जाता है। इसे बनाने के लिए सुखाए गए बीजों से छिलके को पृथक कर लें। अब बीज को पीसकर पाउडर बना लें। 40–50 ग्राम पाउडर को सूती कपड़े की पोटली में बांधकर 500 से 700 ग्राम पानी में रातभर के लिए रखें। दूसरे दिन सुबह पोटली को पानी में खूब हिलाकर उसके रस (सत) को पानी में मिल जाने दें। इस प्रकार प्राप्त सत को 1 लीटर पानी में मिलाएं अब इसमें चिपकने वाले पदार्थ जैसे इण्डोट्रान आदि की आधा चम्मच मात्रा मिलाए। तैयार घोल का सुबह या शाम प्रभावित फसल पर छिड़काव करें।

प्रभावः– कीटों के इल्ली व अन्य अवस्थाओं पर नियंत्रण, कीटों के प्रजनन, अण्डों के विकास एवं एक अवस्था से दूसरी अवस्था के विकास(कायान्तरण) में बाधक/विकर्षण प्रभाव। प्रकृति में पाए जाने वाले जीव–जन्तुओं जैसे कि चिड़ियों, वन्य जीवों, मित्रकीटों–मकड़ी, तितली, लेडी बग, मधुमक्खी, ततैया, परागवाहकों आदि पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। नीम की पत्तियों एवं खली से शोधित मिट्टी में स्थित केंचुआ की वृद्धि एवं उनकी मृत्यु दर पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता।

इस प्रकार जैविक खेती मूलतः फसल–चक्र, मिश्रित फसल, खेत–खलिहान के अवशिष्ट पदार्थ के सदुपयोग, गोबर–खाद, केंचुआ खाद तथा जैविक कीट नियंत्रण के इस्तेमाल पर आधारित है। इससे अवशिष्ट पदार्थों का सदुपयोग भी हो जाता है तथा वातावरण प्रदूषण मुक्त भी रहता है।

(लेखक गोरखपुर एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप के मीडिया समन्वयक हैं।)
E-mail : jitendraabf@gmail.com

खेती का स्वरूप बदलती खेत तलाई योजना

घनश्याम वर्मा

राष्ट्रीय बागवानी मिशन के तहत राजस्थान के चयनित जिलों में सामुदायिक जल स्रोत निर्माण स्कीम तथा राष्ट्रीय कृषि विकास योजनान्तर्गत खेत तलाई (फार्म पोण्ड) स्कीम शुरु की गई है। ये दोनों स्कीमें सूखे की कमी से ग्रसित जिलों में खरीफ एवं रबी की फसलों में फसल अवधि के मध्य या अंत में एक अथवा दो बार जीवनरक्षक सिंचाई सुविधा उपलब्ध करवाने में प्रभावकारी सिद्ध हो रही हैं। इन योजनाओं से कृषकों को न केवल सिंचाई सुविधा प्राप्त हुई है, बल्कि इनसे खेतों तथा उनके आसपास व्यर्थ बहकर चले जाने वाला वर्षा जल संरक्षित हो जाता है। कच्ची खेत तलाईयों से भूमिगत जलस्तर में भी वृद्धि होती है। पर्यावरण में सुधार तथा मवेशियों के लिए पर्याप्त मात्रा में जल की उपलब्धता बनाए रखने में ये कृत्रिम जलाशय कारगर स्रोत सिद्ध हो रहे हैं।

राजस्थान में वर्षा की कमी के कारण कई जिलों में प्रायः सूखे की स्थिति बनी रहती है। जिन क्षेत्रों में वर्षा अधिक होती है, वहां भी बरसाती पानी बहकर व्यर्थ चला जाता है। अल्प वर्षा, अवर्षा, खण्ड वर्षा तथा अतिवर्षा जैसी असमान परिस्थितियों में प्रदेश के किसान या तो प्रकृति पर निर्भर रहते हैं या निजी जल स्रोतों पर। राज्य में भूमिगत जलस्तर का निरंतर गिरते जाना अत्यन्त चिंता का विषय बनता जा रहा है। ऐसे में वर्षा जल को संग्रहित कर उसके विवेकपूर्ण तथा मितव्ययितापूर्ण उपयोग की महत्ती आवश्यकता महसूस की गई है।

राज्य के कृषि विभाग ने किसानों के हितार्थ सिंचाई संबंधी अनेक योजनाएं क्रियान्वित की हैं। इनमें बूंद–बूंद सिंचाई, फव्वारा सिंचाई, कूप पुनर्भरण, पाइप लाइन, खेत तलाई एवं सामुदायिक जल स्रोत निर्माण आदि योजनाएं जल संरक्षण, जल के कुशलतम उपयोग, उत्पादन वृद्धि तथा श्रम एवं बिजली की बचत के उद्देश्य से बहुत कारगर साबित हुई है। सिंचाई संबंधी इन स्कीमों को अपने खेतों में काम में लेने वाले कृषकों को इकाई लागत पर 50 से 70 प्रतिशत तक अनुदान दिया जाता है।

खेत तलाई स्कीम राज्य के उन जिलों में लागू की गई है, जिनमें भू–जल स्तर काफी नीचे चला गया है या नहरी सिंचाई सुविधा उपलब्ध नहीं है। ऐसे समस्याग्रस्त जिलों में प्रदेश के नौ जिले यथा कोटा, बूंदी, बारां, झालावाड़, टोंक, सवाई माधोपुर, करौली, धौलपुर एवं भीलवाड़ा शामिल किए गए हैं। कच्चे फार्म

पोण्ड का निर्माण कृषकों द्वारा उनकी निजी खातेदारी की भूमि पर करवाकर उनमें संग्रहित जल का बोई गई फसलों में जीवनरक्षक सिंचाई के रूप में उपयोग किया जाता है।

खेत तलाई के निर्माण हेतु खेत का निचला बिन्दु होना चाहिए, जिससे खुदाई के लिए कम से कम मेहनत करनी पड़ी। फार्म पोण्ड के लिए काली व भारी रचना की मिट्टी वाली भूमि सर्वोत्तम मानी गई है, क्योंकि इसमें पानी का रिसाव बहुत कम होता है। साथ ही स्थान का चयन करते समय इस बात का ध्यान भी रखना होता है कि भूमि की सतह कठोर हो। फार्म पोण्ड का निर्माण बैलगाड़ी, ट्रैक्टर या बुलडोजर आदि को उपयोग में लाकर या काश्तकार स्वयं मेहनत करके भी कर सकते हैं। पानी के भराव के लिए इनलेट तथा अधिक पानी की निकासी के लिए आउटलेट की व्यवस्था भी होनी चाहिए ताकि अधिक पानी भर जाने पर फार्म पोण्ड टूटे नहीं।

आकार–प्रकार – बूंदी में कृषि विभाग के सहायक निदेशक श्री गजानंद यादव ने बताया कि खेत तलाई का निर्माण किसान को अपने खेत में करना होता है। तलाई की लम्बाई–चौड़ाई कृषक अपनी सुविधानुसार रख सकता है, लेकिन गहराई तीन मीटर से कम नहीं होनी चाहिए। योजनान्तर्गत चार आकार की तलाईयां बनाई जा सकती है। पहला साइज 25 गुना 25 गुना 3 मीटर, दूसरा साइज 25 गुना 25 गुना 4 मीटर, तीसरा साइज 30 गुना 30 गुना 3 मीटर तथा चौथा साइज 30 गुना 30 गुना 4 मीटर निर्धारित है। यह आकार कृषकों की सुविधा के हिसाब से रखा गया है। कच्चे फार्म पोण्ड रेतीली मिट्टी वाली भूमि पर सफल नहीं होते। काली चिकनी मिट्टी पर बने फार्म पोण्ड पानी के ठहराव की दृष्टि से कामयाब माने गए हैं।

इकाई लागत – खेत तलाई की निर्माण लागत उनके साइज के हिसाब से नाबार्ड द्वारा तय कर दी गई है। यह लागत राशि 25 गुना 25 गुना 3 मीटर साईज के पौंड के लिए 50 हजार, 25 गुना 25 गुना 4 मीटर के आकार के पोण्ड के लिए 68 हजार तथा 30 गुना 30 गुना 3 मीटर के पोण्ड के लिए 76 हजार तथा 30 गुना 30 गुना 4 मीटर के लिए 86 हजार रुपये निर्धारित है। राजस्थान सरकार द्वारा खेत तलाई स्कीम में खेत तलाई का निर्माण करने वाले कृषकों को लागत राशि का 50 प्रतिशत या अधिकतम 30 हजार रुपये में से जो कम हो, अनुदान दिया जाता है।

जल संग्रहण – टोंक जिले के सहायक निदेशक कृषि (विस्तार) श्री आर.सी.जैन ने बताया कि पहली साइज यानी 25

गुना 25 गुना 3 क्यू. मीटर आकार के फार्म पोण्ड में एक लाख 87 हजार 500 लीटर वर्षा जल संग्रहित होगा, जो किसी भी फसल में एक हेक्टेयर भूभाग में दो बार पिलाई के लिए लगभग पर्याप्त होता है। दूसरे साइज अर्थात 25 गुना 25 गुना 4 मीटर आकार के पोण्ड में करीब ढाई लाख लीटर पानी संग्रहित होगा, जो ढाई हेक्टेयर भूमि पर दो बार पानी के लिए पर्याप्त होगा। इसी प्रकार इनसे बड़े आकार के फार्म पोण्ड से और अधिक रकबा सिंचित किया जा सकता है। उन्होंने बताया कि खेत तलाई का निर्माण इस प्रकार किया जाए, जिससे उसमें आसपास की जमीन का बरसाती पानी आकर एकत्रित हो सके। जिन इलाकों में दिन में बिजली नहीं आती हो, उनमें रात्रि के समय लाइट उपलब्ध रहने पर फार्म पोण्ड में नलकूप या किसी अन्य स्रोत से पानी भर लिया जाए और सुविधानुसार दिन के समय खेतों में पिलाई की जा सकती है।

काश्तकारों की जुबानी – अमीनपुरा (टोंक) के कृषक किशन जाट ने इस वर्ष 37 गुना 19 गुना 3 क्यू मीटर आकार का फार्म पौंड बनाया। उन्होंने रबी में 12 बीघा में सरसों बोई थी, जिसमें फार्म पोण्ड से दो बार पिलाई करने से दुगुनी पैदावार ले ली। पहले उनके खेत में प्रति बीघा दो क्विंटल पैदावार होती थी, जो इस बार सिंचाई सुविधा मिल जाने से दुगुनी यानी चार क्विंटल बैठी। अर्थात एक ही वर्ष में तलाई निर्माण में हुआ खर्चा वसूल हो गया। इससे पहले किशन जाट की कृषि भूमि पर सिंचाई का कोई साधन ही नहीं था। ग्राम पाडली के रामप्रसाद मीणा ने अपने खेत में 74 गुना 19 गुना 3 क्यू. मीटर आकार का फार्म पोण्ड बनाया, जिससे प्रति वर्ष करीब डेढ़ लाख रुपये का अतिरिक्त लाभ ले रहे हैं। रामप्रसाद ने बताया कि उनके 25 बीघा के खेतों में पहले वह सरसों की खेती करते थे, जो प्रति बीघा डेढ़ क्विंटल बैठती थी, जबकि फार्म पोण्ड बन जाने के बाद सिंचाई की सुविधा मिल जाने से प्रति बीघा 5–6 क्विंटल बैठ जाती है। सरसों के अलावा अब वह गेहूं की पैदावार भी लेने लगे हैं, जो प्रति बीघा 14–15 क्विंटल तक हो रही है।

योजनान्तर्गत अलीमपुरा की महिला कृषक लाड कंवर ने भी अपने 40 बीघा के खेत में 67 गुना 19 गुना 3 मीटर आकार का फार्म पोण्ड बनवाया। यह महिला कृषक पूर्व में सरसों की पैदावार ही लेती थी, जो प्रति बीघा 2 क्विंटल होती थी, जबकि अब यह बढ़कर प्रति बीघा 5–6 क्विंटल तक होने लगी है। पहले गेंहू की पैदावार नहीं होती थी, जबकि अब प्रति बीघा 12 से 15 क्विंटल तक गेहू का उत्पादन भी हो रहा है। लाड कवंर ने 40 बीघा में से 32 बीघा में सरसों तथा 8 बीघा में गेहूं बोए हैं।

ग्राम पाडली के ही कृषक भरतलाल मीणा ने अपने 20 बीघा के खेत में इस वर्ष 12 बीघा में सरसों तथा 8 बीघा में गेहूं बोये हैं। इनके पास भी सिंचाई का कोई साधन नहीं था। फार्म पोण्ड स्कीम के तहत इन्होंने 30 गुना 30 गुना 3 मीटर आकार का फार्म पोण्ड बनवाया और उससे अपने खेतों में दो बार पिलाई की। नतीजा वही रहा जो दूसरे कृषकों के साथ हुआ। भरतलाल पहले प्रति बीघा दो क्विंटल पैदावार लेते थे जो अब 5 क्विंटल हुई। उन्होंने भी इस वर्ष पहली बार गेहूं भी बोया, जो प्रति बीघा 12 क्विंटल तक हुआ।

इनकी भी बदली तकदीरः– बूंदी जिले के नैनवां उपखंड क्षेत्र के कई काश्तकारों ने अपने खेतों में सिंचाई सुविधा प्राप्त करने के लिए खेत तलाईयों का निर्माण करवाया है। इस उपखंड क्षेत्र में भूगर्भ में कहीं 800 मीटर की गहराई तक पानी नहीं, तो कहीं 150 से 200 फीट पर ही अनुपयोगी पानी निकलता है। सिंचाई के लिए बांध और नहरें भी नहीं हैं। ऐसे में कई किसानों ने अपने खेतों में बरसाती पानी के संग्रहण एवं संरक्षण के लिए खेत तलाईयां बनवा ली हैं।

धानुगांव के किसान सुर्जन, उर्जन एवं भावपुरा के गोपाल ने बताया कि सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध नहीं होने के कारण उन्हें दूर से पानी लाना पड़ता था। इस पर 600 से 800 लीटर डीजल खर्च हो जाता था। उत्पादन भी प्रति बीघा एक क्विंटल ही होता था, लेकिन पोण्ड में संग्रहित पानी से सिंचाई करने में

मात्र 60 से 80 लीटर डीजल खर्च हुआ। समय भी कम लगा और उत्पादन भी तीन गुना यानी तीन क्विंटल प्रति बीघा हुआ। साथ ही भूमि खराब होने का खतरा भी टल गया।

लाभार्थी कृषक सुर्जन ने बताया कि उसने अपने खेत में पोण्ड बनाकर बरसाती पानी संग्रहित करके 25 बीघा भूमि में सिंचाई की। कम लागत में तीन गुना सिंचाई कर ली और भूमि की उर्वरक क्षमता में वृद्धि हुई। सुर्जन का अनुसरण कर क्षेत्र के करीब दो दर्जन गांवों के किसान ने अपने खेतों में कच्चे फार्म पोण्ड बनवाए हैं।

सामुदायिक जल स्रोत :– व्यक्तिगत खेत तलाई स्कीम के अलावा सामुदायिक जल स्रोत स्कीम भी कृषकों के लिए वरदान सिद्ध हो रही है। सामुदायिक फार्म पोण्ड (जलाशय) पक्की संरचना होती है, जिसकी संपूर्ण इकाई लागत 10 लाख रुपये राष्ट्रीय बागवानी मिशन के तहत अनुदान स्वरूप दी जाती है। इन सामुदायिक जल स्रोतों के सार–संभाल की जिम्मेदारी एवं उपयोग का अधिकार कृषक समूह का ही होता है। प्रत्येक कृषक समूह में दस किसान सम्मिलित हैं। इस स्कीम में किसानों को स्वयंसहायता समूह बनाना होता है। कृषक समूह के पास एक स्थान पर 10 हेक्टेयर भूमि होना जरूरी है। कृषक समूह में न्यूनतम कृषक संख्या पांच रहनी चाहिए। कृषक समूह को जल स्त्रोत निर्माण के बाद वर्षा जल संचित होने पर कम से कम 4 हेक्टेयर में ड्रिप के साथ फलोद्यान भी लगाने होते हैं।

ये हैं लाभार्थी समूह :– सामुदायिक जल स्रोत स्कीम में बूंदी जिले में 19 काश्तकार समूहों के 190 कृषक लाभान्वित हुए हैं। इस स्कीम से वर्ष 2008–09 में लाभार्थी समूहों में हनुवंतपुरा, मूंडली, चैनपुरिया, बडगांव, नैनवां, लालगंज एवं मानपुरा के समूह, वर्ष 2009–10 में जगमूंडा, मीणों की झौंपड़िया (जैतपुर), उगेन, नाहरगंज एवं भावपुरा तथा प्रारंभिक वर्ष 2007–08 में काछोला, बटावदी, नयागांव, बीजलवा, जजावर तथा कोलासपुरा के कृषक समूह शामिल रहे। मूंडली के कृषक समूह के अध्यक्ष श्री बजरंग लाल मीणा ने बताया कि उनके खेतों में सिंचाई के लिए निजी जल स्रोत होते हुए भी उन्होंने आसपास के दस किसानों का एक समूह बनाकर सामुदायिक जल संरक्षण संरचना (वाटर हार्वेस्टिंग स्ट्रक्चर) का निर्माण करवाया है। कृषि विभाग ने प्रत्येक फार्म पोण्ड के लिए 10 लाख रुपये का अनुदान बागवानी मिशन योजनान्तर्गत उपलब्ध करवाया है। फार्म पोण्ड 42 गुना 42 मीटर साइज में है, जिसमें एकत्रित पानी से कृषक समूह के काश्तकारों की करीब 10 हेक्टेयर कृषि भूमि एवं बगीचों में जीवनरक्षक सिंचाई सुविधा प्राप्त की जा रही है।

निसंदेह राष्ट्रीय कृषि विकास योजनान्तर्गत फार्म पोण्ड स्कीम तथा राष्ट्रीय बागवानी मिशन के तहत सामुदायिक फार्म पोण्ड स्कीम कृषकों के लिए वरदान सिद्ध हो रही है। इन योजनाओं में निर्मित पोण्ड (तलाईयों) में किसान बरसाती पानी को संग्रहित कर लेते हैं, जो वैसे भी उपजाऊ होता है। इनसे विपरीत परिस्थितियों में रबी एवं खरीफ फसलों में सिंचाई कर बेहतर उपज प्राप्त की जा सकती है। कच्चे फार्म पोण्ड तो खेत के आसपास का जल स्तर भी बढ़ाते हैं। पोण्ड से सिंचाई में यदि स्प्रिंकलर सेट का उपयोग किया जाए तो डेढ़ गुना भूमि में सिंचाई सुविधा प्राप्त की जा सकती है। बरसात के पानी का सिंचाई कार्यों में बेहतर उपयोग करने तथा गांव का पानी गांव में और खेत का पानी खेत में उपयोग करने की वैज्ञानिक सोच की सार्थकता को सिद्ध करने वाली ये योजनाएं खासतौर से छोटे एवं मझोले कृषकों के लिए वरदान साबित हो रही हैं।

(लेखक सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी हैं।)
ईमेल : cprbun@hotmail.com

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।
शुल्क : एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का
(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)
डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।
कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग को नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....
पता .....
..... पिन .....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

कृषि विकास की गाथा बयां करती क्रान्तियां

डॉ. जितेन्द्र सिंह एवं डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह

देश के कृषि विकास की गाथा में हरित क्रान्ति के अतिरिक्त श्वेत क्रान्ति, पीली क्रान्ति, गुलाबी क्रान्ति, गोल क्रान्ति, नीली क्रान्ति, सिल्वर क्रान्ति, सुनहरी आदि क्रान्तियों का अहम योगदान रहा है। हरित- क्रान्ति के जरिए देश के खाद्यान्न उत्पादन में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। सत्तर के दशक में देश खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भर बना और अस्सी के दशक में मौसम एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं से लड़ने के लिए खाद्यान्नों का बफर स्टॉक बनाने में भी सफल हो गया। नब्बे के दशक आते-आते तो देश कुछ खाद्यान्नों के निर्यात करने की स्थिति में पहुंच गया। यह सब हरित क्रान्ति का ही चमत्कार था।

देश आजादी के डेढ़ दशक बाद तक तमाम प्रयासों के बावजूद खाद्यान्न की समस्या से उबर नहीं पा रहा था। देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी कि लोगों को दो जून की रोटी कैसे मुहैया कराई जाए? उस समय देश की जनसंख्या वृद्धि दर भी खाद्यान्न उत्पादन दर से अधिक थी। खाद्यान्न की समस्या से पार पाने के लिए हरित क्रान्ति की शुरुआत की गई। यह क्रान्ति इतनी सफल हुई कि देश के खाद्यान्न उत्पादन की दिशा ही बदल गई। इस क्रान्ति का देश पर इतना व्यापक और प्रभावशाली असर हुआ कि वर्ष–दर–वर्ष एक के बाद एक कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में क्रान्तियों का आगमन होता गया और देश कृषि विकास की बुलंदियों को छूता गया। देश के कृषि विकास की गाथा में हरित क्रान्ति के अतिरिक्त श्वेत क्रान्ति, पीली क्रान्ति, गुलाबी क्रान्ति, गोल क्रान्ति, नीली क्रान्ति, सिल्वर क्रान्ति, सुनहरी आदि क्रान्तियों का अहम योगदान रहा है।

हरित क्रान्ति : देश में हरित क्रान्ति की शुरुआत 1966–67 में हुई। इसका श्रेय डॉ. नार्मन ई बोरलाग को जाता है। अमेरिका के सैन्य सलाहकार डी.सी. सामन ने जापानी गेहूं की एक बौनी प्रजाति भेजी थी। इस प्रजाति का संकरण बोरलाग ने मैक्सिको स्थित अन्तर्राष्ट्रीय गेहूं एवं मक्का अनुसंधान केन्द्र (सिमिट) में फफूंद प्रतिरोधी गेहूं की किस्मों से कराया तो गेहूं की अर्धबौनी अधिक उपज देने वाली

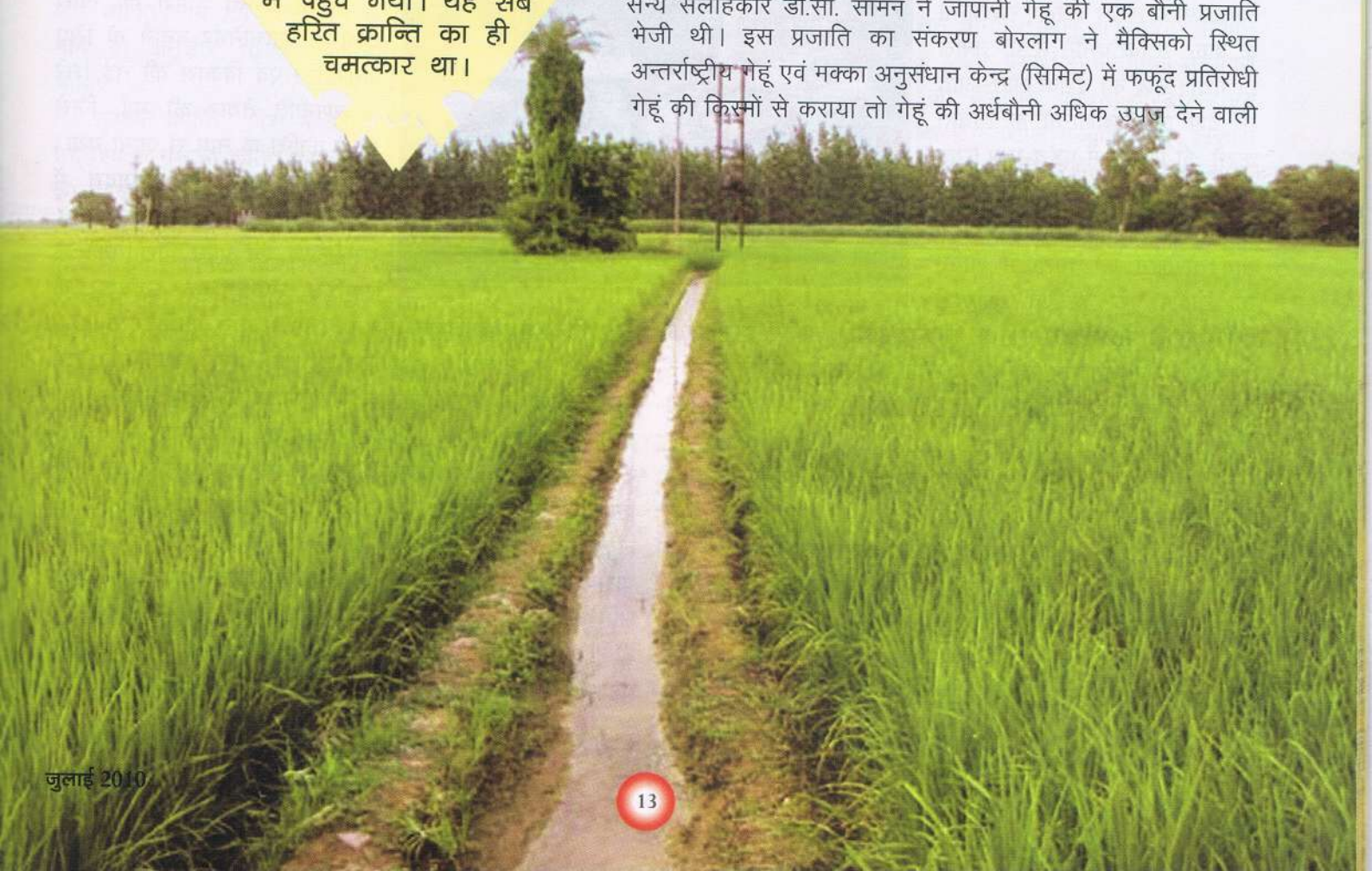

प्रजातियों की प्राप्ति हुई। इसी तरह धान का ताईचुंग नेटिव संस्करण बीमारी प्रतिरोधक अन्य किस्मों के साथ कराया गया तो अधिक उपज देने वाली उन्नतशील प्रजातियों की प्राप्ति हुई। सम्पूर्ण हरित क्रान्ति की रचना इन्हीं गेहूं और धान की प्रजातियों को मिलाकर रची गई। इन किस्मों की पैदावार रासायनिक उर्वरकों के साथ बहुत अच्छी थी। बहरहाल, सबसे पहले इसके लिए 1966 में मैक्सिको से 18,000 टन गेहूं और धान के बीज को मंगाया गया। प्रारम्भ में सिंचित क्षेत्र में किसानों को पांच–पांच किलोग्राम के पैकेट बनाकर वितरित किए गए। इसके बाद जो घटित हुआ, वह सबके सामने है। देश में सन् 1950 के दशक में कुल खाद्यान्न उत्पादन लगभग 50 मिलियन टन था, जो आज बढ़कर लगभग 230 मिलियन टन तक पहुंच गया। इस क्रान्ति का असर देश तक ही सीमित नहीं था बल्कि वैश्विक स्तर पर रहा। यही कारण था कि एशिया एवं लैटिन अमेरिका के विभिन्न भागों में भी हरित क्रान्ति खूब फली–फूली।

हरित क्रान्ति के जरिए देश के खाद्यान्न उत्पादन में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। पहले सत्तर के दशक में देश खाद्यान्नों से आत्मनिर्भर बना और सन् अस्सी के दशक के बाद देश मौसम एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं से लड़ने के लिए खाद्यान्नों के बफर स्टाक बनाने में भी सफल हो गया। नब्बे का दशक आते–आते तो देश कुछ खाद्यान्नों के निर्यात करने की स्थिति में पहुंच गया। यह सब हरित क्रान्ति का ही चमत्कार था। हरित क्रान्ति की सफलता के बाद बोरलाग को 1970 में शान्ति का नोबेल पुरस्कार एवं 2007 में अमेरिका के सर्वोच्च सम्मान से नवाजा गया। लेकिन हम सबके लिए दुख की बात यह रही कि दुनिया को भूख से मुक्ति दिलाने वाला मसीहा 13 सितम्बर, 2009 को हम सबको अलविदा कह गया।

श्वेत क्रान्ति : भारत में श्वेत क्रान्ति की नींव सघन पशु विकास कार्यक्रम 1964–65 के तहत ही पड़ गई थी। लेकिन इसको त्वरित गति प्रदान करने के लिए आपरेशन फ्लड चलाया गया। यह एक ग्रामीण विकास परक कार्यक्रम था जिसको नेशनल डेयरी डेवलपमेंट बोर्ड द्वारा 1970 में शुभारम्भ किया गया। यह विश्व की सबसे बड़ी योजना थी। इसके सूत्रधार डॉ. वर्गीज कुरियन थे, जो नेशनल डेयरी डेवलपमेंट बोर्ड के अध्यक्ष भी थे। आपरेशन फ्लड को तीन चरणों में चलाया गया था। प्रथम चरण – 1970–80 : इस दौरान 18 प्रमुख दुग्ध शेडों की स्थापना की गई एवं डेयरी को एक इन्डस्ट्री के रूप में विकसित किया गया। द्वितीय चरण 1981–85 : इस चरण में दुग्ध शेडों की संख्या 18 से बढ़ाकर 136 की गई एवं 290 शहरी बाजारों तक पकड़ बढ़ाई गई। इस तरह से लगभग 42.5 लाख दुग्ध उत्पादन–कर्ताओं तक पहुंच बनाई गई। तृतीय चरण – 1985–96 : इस चरण की शुरुआत का मुख्य उद्देश्य था प्रथम एवं द्वितीय चरणों से प्राप्त लाभों को बनाए रखना, सरकारी समितियों की संख्या में वृद्धि करना, दुग्ध उत्पादन क्षेत्रों को राष्ट्रीय दुग्ध ग्रिड से जोड़ना, जिससे पूरे वर्ष पर्याप्त मात्रा में दूध उपलब्ध हो सके। इस आपरेशन की सफलता इस बात से लगाई जा सकती है कि सन् 1950–51 में देश का दुग्ध उत्पादन मात्र 17 मिलियन टन था जो बढ़कर लगभग 97 मिलियन टन हो गया। नतीजतन, देश दुग्ध उत्पादन में दुनिया का सर्वाधिक दूध उत्पादन करने वाला देश बन गया। देश में दुग्ध क्रान्ति के पुरोधा डॉ. वर्गीज कुरियन को उनके कार्यों के लिए पद्म विभूषण, रेमन मैग्सेसे, वर्ड फूड, वेटलर वर्ड पीस आदि पुरस्कारों से नवाजा गया।

पीली क्रान्ति : देश को खाद्य तेलों से आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनुसंधान एवं विकास की नई सिरे से रणनीति तैयार की गई, जिसे पीली क्रान्ति के नाम से जाना गया। तिलहनी फसलों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता लाने के लिए उत्पादन, प्रसंस्करण एवं प्रबंध प्रौद्योगिकी के समुचित उपयोग के उद्देश्य के लिए तिलहन प्रौद्योगिकी मिशन 1986 में शुरु किया गया। इस मिशन में 23 राज्यों के 337 जनपदों को शामिल गया गया। इस मिशन के बहुत ही सकारात्मक परिणाम हासिल हुए, लेकिन अभी काफी कुछ करना शेष है। इस मिशन को चार चरणों में चलाया गया। प्रथम चरण में किसानों को अधिक लाभ अर्जित करने के लिए तिलहन की आधुनिक उत्पादन प्रौद्योगिकी को अपनाने को लेकर जोर दिया गया। द्वितीय चरण में प्रोसेसिंग के दौरान पारम्परिक और अपारम्परिक तरीके से तेल निकालने में होने वाली क्षति को कम करना। तृतीय चरण में किसानों को समय से उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशक, सिंचाई एवं ऋण आदि की उपलब्धता पर जोर दिया गया। चतुर्थ चरण में फसल कटाई उपरान्त उचित

भण्डारण, उचित मूल्य निर्धारण एवं तेल प्रसंस्करण इकाईयों को सहायता करना। देश में आजादी के बाद खाद्य तेलों में पांच गुना से अधिक वृद्धि हुई है। वर्तमान में खाद्य तेलों का कुल उत्पादन लगभग 28.8 मिलियन टन है। देश में खाद्य तेलों की उपलब्धता प्रति व्यक्ति/वर्ष 7.5 किलोग्राम है। जबकि अन्तर्राष्ट्रीय पोषक मान के अनुसार 10.95 किलोग्राम प्रति व्यक्ति/वर्ष होना चाहिए।

गुलाबी क्रान्ति : देश में झींगा उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से गुलाबी क्रान्ति का आगाज हुआ। पहले झींगा उत्पादन का कार्य प्रमुख रूप से प्राकृतिक तरीके से समुद्र के खारे पानी से किया जाता था। लेकिन वैज्ञानिकों के अथक प्रयास के चलते कृषि में हुए तकनीकी विकास और अनुसंधान से झींगा का सफल उत्पादन मीठे पानी में भी सम्भव हो सका। देश में झींगा उत्पादन की भरपूर संभावनाएं मौजूद हैं क्योंकि लगभग 4 मिलियन हेक्टेयर मीठे जल क्षेत्र के रूप में जलाशय, पोखरे, तालाब आदि उपलब्ध हैं। इन जल क्षेत्रों का उपयोग झींगा पालन के लिए बखूबी किया जा सकता है। वर्तमान में देश में झींगा पालन एक बहुत तेजी से बढ़ने वाले व्यवसाय के रूप में उभरा है। पिछले दो दशकों में मत्स्य पालन के साथ–साथ झींगा पालन व्यवसाय प्रति वर्ष 6 फीसदी की दर से बढ़ रहा है। आज घरेलू बाजार के साथ विदेशी बाजार में झींगा की काफी मांग बढ़ी है। आज देश विश्व के सबसे बड़े झींगा निर्यातक राष्ट्र के रूप में जाना जाता है।

गोल क्रान्ति : यह क्रान्ति देश में आलू के उत्पादन, उपभोग एवं योजनाबद्ध तरीके से अनुसंधान और तकनीकी विकास को समर्पित है, जिससे देश में पर्याप्त मात्रा में आलू का उत्पादन किया जा सके। इसके लिए केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान की शिमला में स्थापना की गई। देश में आलू उत्पादन को तीव्र गति प्रदान करने के लिए सन् 1971 में अखिल भारतीय समन्वित आलू सुधार परियोजना की शुरुआत केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान के तहत की गई। संस्थान के अथक प्रयास से आधुनिक उत्पादन प्रौद्योगिकी, कीट–व्याधियों का समुचित प्रबंधन, भण्डारण एवं लगभग तीन दर्जन से अधिक उन्नतशील प्रजातियों का विकास किया जा चुका है। आलू की इन प्रजातियों में कुछ तो मुल्क के बाहर भी काफी लोकप्रिय रही। आलू के सत्य बीज की खोज ने इस क्रान्ति को एक और ऊचाई प्रदान की। आज आलू के एक पुड़िया बीज से काफी बड़े क्षेत्रफल की बुवाई करना संभव हो सका है। आलू के सत्य बीज से कम खर्चे में अधिक उत्पादन के साथ रोगमुक्त फसलोत्पादन संभव हुआ है। एक अनुमान के मुताबिक 1950–51 में आलू की जो उत्पादकता 69.2 कुन्टल/हेक्टेयर थी, जो आज बढ़कर 181.5 कुन्टल/हेक्टेयर हो गई है। आजादी के समय देश में आलू का उत्पादन 1.66 मिलियन टन से बढ़कर 24 मिलियन टन तक पहुंच चुका है। आज देश का आलू उत्पादन में तीसरा एवं क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से दुनिया में चौथा स्थान है। आज देश में आलू एक स्वतंत्र उद्योग का रूप ले चुका है। शायद ही कोई ऐसी सब्जी की फसल होगी जिसका इतना व्यापक और विविध तरीके से इस्तेमाल में लाया जाता होगा। फिर भी, अभी आलू के उत्पादन और उपभोग की भरपूर संभावनाएं हैं क्योंकि देश में आलू की खपत अभी मात्र 15 कि.

ग्रा. प्रति व्यक्ति/वर्ष है, जो विश्व के औसत आलू के उपभोग 33.68 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति/वर्ष से काफी कम है।

नीली क्रान्ति : देश में प्राचीनकाल से मछली पालन का कार्य किया जा रहा है। यही कारण है कि देश की एक बहुत बड़ी आबादी अपनी आजीविका का अर्जन बहुत पहले से मत्स्य पालन से करती आ रही है। मत्स्य पालन प्रमुख रुप से प्राकृतिक झीलों, जलाशयों, नदियों, नहरों, तालाबों, पोखरों द्वारा परम्परागत ढंग से किया जाता था। मत्स्य पालन की विपुल संभावनाओं को देखते हुए देश के नीति निर्धारकों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद केन्द्रीय समुद्री मत्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, मंडपम एवं केन्द्रीय अंतः स्थलीय मत्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर में स्थापना की गई। इन संस्थानों के अथक प्रयास से कृत्रिम मत्स्य प्रजनन प्रौद्योगिकी, परिपक्व प्रजनकों के उत्पादन की प्रौद्योगिकी, बहुजना प्रौद्योगिकी, हैचरी में बीच उत्पादन प्रौद्यागिकी का विकास संभव हो सका। मत्स्य उत्पादन की गति को और तीव्र करने के लिए सन् 1971 में अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना

का गठन किया गया जिसके तहत भारतीय जलाशयों की पारिस्थितिकी एवं मत्स्यिकी विकास का विस्तृत अध्ययन और विवेचना की गई। लिहाजा देश का मत्स्य उत्पादन सन 1950–51 में 0.75 मिलियन टन से बढ़कर लगभग 6.4 मिलियन टन प्रतिवर्ष तक पहुंच गया। आज देश विश्व में मत्स्य उत्पादन में तीसरे एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से दूसरे मुकाम पर है। देश के मत्स्य उत्पादन में वृद्धि के लिए चलाई गई योजनाओं व कार्यक्रमों को समग्र रूप से नीली क्रान्ति के रूप में जाना गया।

धूसर क्रान्ति : देश की आजादी के बाद खेती में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नगण्य था। उस समय खाद्यान्न उत्पादन की प्रथम आवश्यकता थी कि खेती में अधिक से अधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए। इस लिहाज से भी रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग जरूरी था क्योंकि हरित क्रान्ति के समय गेहूँ और धान की जो प्रजातियां खेती के लिए मंगाई गई थी, वह इन उर्वरकों के समुचित इस्तेमाल से ही भरपूर उत्पादन दे सकती थी। इस कार्य के लिए सरकार द्वारा खेती में रासायनिक उर्वरकों के उपभोग को बढ़ावा देने के लिए एक सघन अभियान चलाया गया जिसे धूसर क्रान्ति की उपमा दी गई। इस क्रान्ति की सफलता का परिणाम है कि सन् 1950–51 में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग एक मिलियन टन से भी कम था जो आज बढ़कर 20.30 मिलियन टन प्रतिवर्ष तक पहुच गया। सही मायने में देश को खाद्यान्नों से आत्मनिर्भर बनाने में रासायनिक उर्वरकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

सिल्वर क्रान्ति : हमारे देश में काफी बड़ी तादाद में लोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुर्गी पालन से आय प्राप्त करते हैं। एक सर्वेक्षण के मुताबिक 50 फीसदी से अधिक भूमिहीन श्रमिक पशुपालन, विशेष रूप से मुर्गी पालन से अपनी आजीविका चलाते हैं। देश में अण्डा उत्पादन एवं मुर्गी पालन को बढ़ावा देने के लिए सिल्वर क्रान्ति की शुरुआत की गई। मुर्गियों से अधिक अण्डे व मांस उत्पादन के लिए देश में 5 बड़े कुक्कुट फार्म बंगलौर, मुम्बई, भुवनेश्वर, दिल्ली और शिमला में स्थापित किए गए। यहां पर उन्नत नस्ल की मुर्गियों को आयात कर संकरण द्वारा उम्दा नस्ल की मुर्गियों का विकास किया गया। सरकार के अथक प्रयास का परिणाम है कि आज देश का मुर्गी व्यवसाय विश्व का सबसे बड़ा व तेजी से बढ़ने वाला क्षेत्र बनकर उभरा है। सन् 1950–51 में अण्डे की उपलब्धता प्रति व्यक्ति/वर्ष मात्र पांच थी जो आज बढ़कर 41 हो गई है। इस तरह से देश में अण्डे का कुल उत्पादन लगभग 48 बिलियन और कुल चिकन का उत्पादन लगभग 1.90 मिलियन मीट्रिक टन तक पहुंच गया है। आज भारत का अण्डा उत्पादन में विश्व में चौथा स्थान है। दस प्रमुख ब्यालर उत्पादन देशों में भी भारत का प्रमुख स्थान है। आज देश का मुर्गी पालन का व्यवसाय 13 फीसदी वार्षिक की दर से वृद्धि कर रहा है। शहरी क्षेत्रों के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी मुर्गी पालन का व्यवसाय खूब फल–फूल रहा है। भविष्य में इस व्यवसाय के और

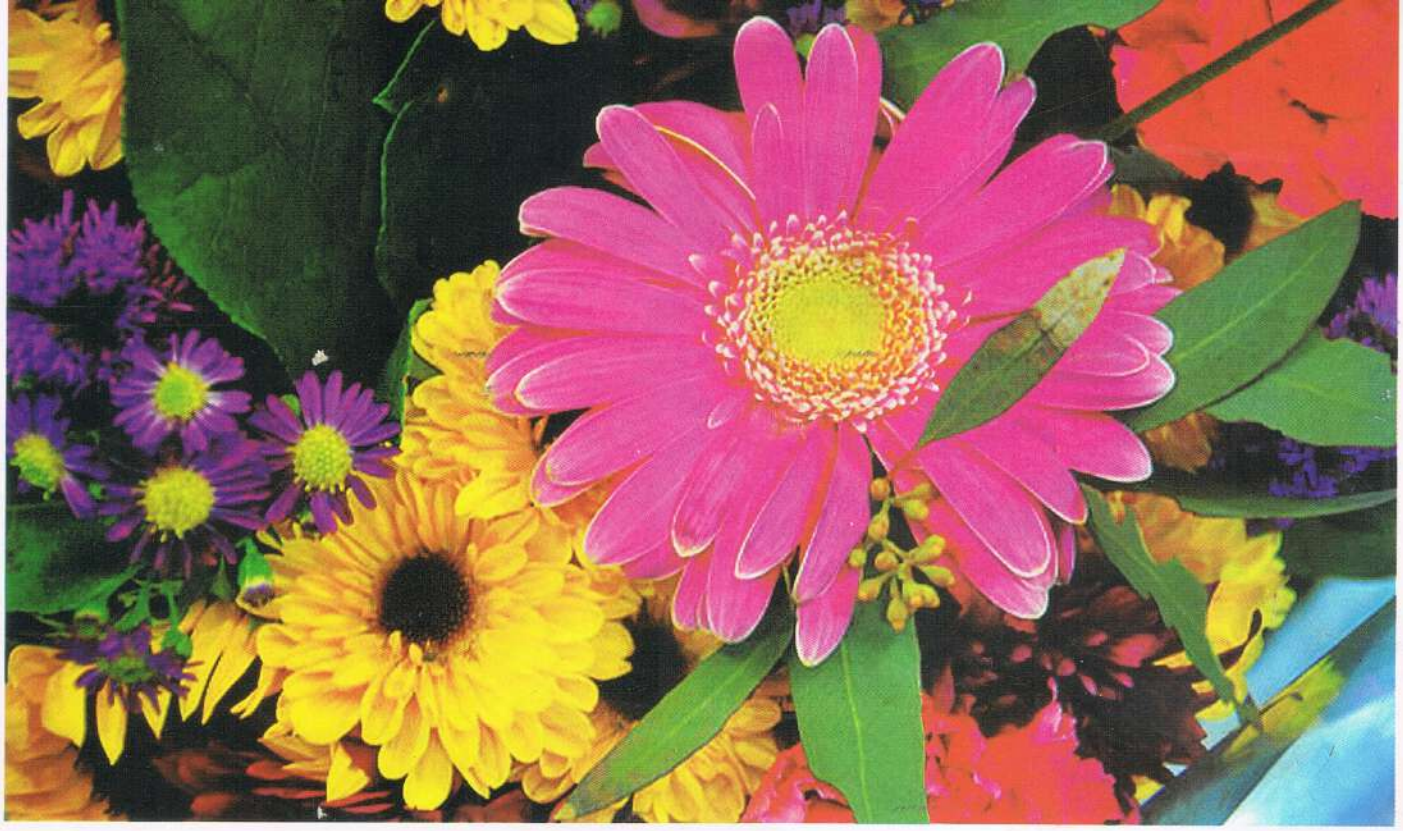

फलने–फूलने की पूरी संभावनाएं हैं।

सुनहरी क्रान्ति : इस क्रान्ति का सम्बन्ध देश में बागवानी फसलों का भरपूर उत्पादन लेने से है, विशेषकर सेब उत्पादन से देश में प्रतिवर्ष लगभग 184.9 मिलियन टन फल तथा सब्जियों का उत्पादन होता है जिसमें विभिन्न तरह की सब्जियों का 113.5 मिलियन टन एवं फलों का 54.4 मिलियन टन का कुल योगदान है। इस तरह से दुनिया में भारत का फलों एवं सब्जियों के उत्पादन में दूसरा स्थान है। अभी दुनिया में सर्वाधिक फलोत्पादन ब्राजील में तथा सब्जियों का उत्पादन चीन में होता है। आम, केला, नारियल, काजू, सपोटा एवं मसालों की फसलों के उत्पादन में तो प्रथम स्थान है। हमारे देश में काफी बड़े क्षेत्रफल पर फलों एवं सब्जियों की खेती की जाती है। एक अनुमान के मुताबिक 3.73 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर फल एवं 6.09 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर सब्जियों की खेती की जाती है। पिछले एक दशक में फलों के उत्पादन में 37 फीसदी और सब्जी उत्पादन में 33 फीसदी की दर से वृद्धि हुई। उत्पादन में इतनी वृद्धि के बावजूद फलों एवं सब्जियों को पोषक मान के अनुसार 85 ग्राम फल व 300 ग्राम सब्जी प्रति व्यक्ति/दिन को दृष्टि देश अभी उपलब्ध नहीं करा पा रहा है। इस दिशा में प्रयास के लिए राष्ट्रीय बागवानी मिशन की शुरुआत सन 2005–06 में की गई। इस मिशन का परिव्यय 23 अरब रुपये है जिसका मुख्य उद्देश्य क्षेत्र पर आधारित बागवानी के समग्र विकास से है। इस मिशन का लक्ष्य 2011–12 तक समग्र बागवानी उत्पादन को 300 मिलियन टन करने का है। लेकिन इसका एक दुखद पहलू यह है कि देश के कुल फल एवं सब्जी उत्पादन का लगभग 30 फीसदी प्रसंस्करण की समुचित सुविधा न होने के कारण प्रतिवर्ष बर्बाद हो जाता हैं इस दिशा में अभी काफी प्रयास करने की जरुरत है देश में प्रतिवर्ष होने वाली फलों एवं सब्जियों की बर्वादी को प्रसंस्करण आधारित इकाइयों को स्थापित कर होने वाली हानि को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

इन्द्रधनुषी क्रान्ति : इक्कीसवीं सदी में देश की बढ़ती जनसंख्या को मद्देनजर रखते हुए वर्ष 2000 में एक नई राष्ट्रीय कृषि नीति का मसौदा तैयार किया गया। इस कृषि नीति के तहत जोर दिया गया कि देश के समूचे कृषि उत्पादों को आगामी दस वर्षों में दो गुना किया जाएगा। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए खाद्यान्न उत्पादन दर को 4 फीसदी वार्षिक वृद्धि दर से निर्धारित किया गया है। इस नई कृषि नीति को ही इन्द्रधनुषी क्रान्ति के रूप में शुरु किया गया है। इस क्रान्ति का आशय है कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से देश में अब तक विभिन्न क्रान्तियों जैसे हरित क्रान्ति, श्वेत क्रान्ति, पीली क्रान्ति, गुलाबी क्रान्ति, गोल क्रान्ति, नीली क्रान्ति, सिल्वर क्रान्ति, सुनहरी आदि क्रान्तियों को एक साथ समग्र रूप से लेकर चलना होगा। इसी को इन्द्रधनुषी या सतरंगी क्रान्ति की संज्ञा दी गई। इस क्रान्ति का उद्देश्य बहुत वृहद है। आने वाले समय में देश को भारी मात्रा में खाद्यान्न, फल, सब्जी, दूध, अण्डा, मीट एवं खाद्य तेलों की आवश्यकता पड़ेगी जिसकी पूर्ति करना इतना आसान न होगा। ऐसे में इन्द्रधनुषी क्रान्ति को शत प्रतिशत बनाना ही एक विकल्प नजर आता है।

(लेखक कृषि संकाय, उदय प्रताप स्वायतशासी महाविद्यालय, वाराणसी में प्रवक्ता हैं।)
ई–मेल : dr_jitendrasingh@sify.com

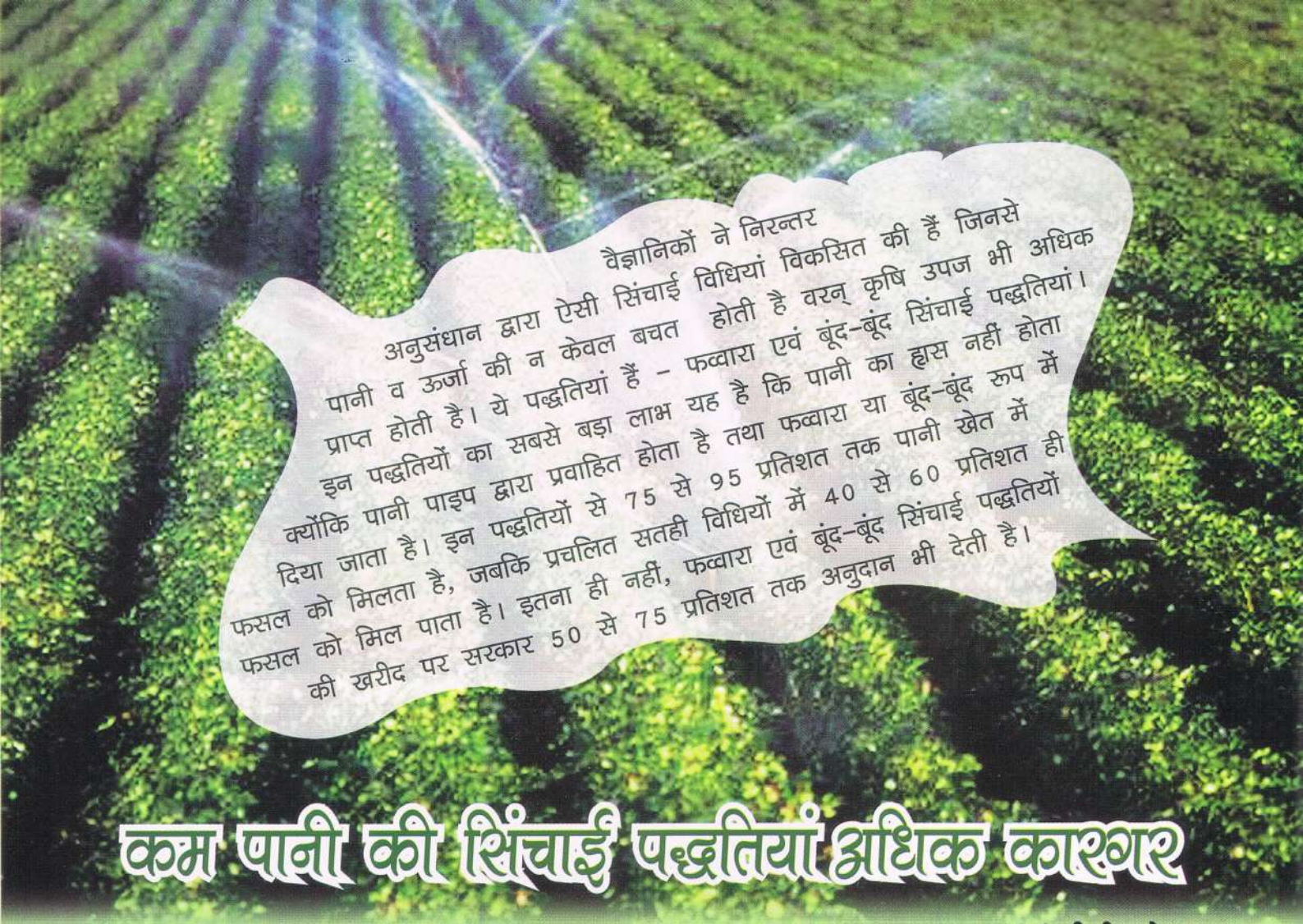

कम पानी की सिंचाई पद्धतियां अधिक कारगर

वैज्ञानिकों ने निरन्तर अनुसंधान द्वारा ऐसी सिंचाई विधियां विकसित की हैं जिनसे पानी व ऊर्जा की न केवल बचत होती है वरन् कृषि उपज भी अधिक प्राप्त होती है। ये पद्धतियां हैं – फव्वारा एवं बूंद-बूंद सिंचाई पद्धतियां। इन पद्धतियों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि पानी का ह्रास नहीं होता क्योंकि पानी पाइप द्वारा प्रवाहित होता है तथा फव्वारा या बूंद-बूंद रूप में दिया जाता है। इन पद्धतियों से 75 से 95 प्रतिशत तक पानी खेत में फसल को मिलता है, जबकि प्रचलित सतही विधियों में 40 से 60 प्रतिशत ही फसल को मिल पाता है। इतना ही नहीं, फव्वारा एवं बूंद-बूंद सिंचाई पद्धतियों की खरीद पर सरकार 50 से 75 प्रतिशत तक अनुदान भी देती है।

डॉ. डी.डी. ओझा

कृषि विकास किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था का मेरुदण्ड है। सघन फसल उत्पादन में पानी एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण आदान है जिसका कोई विकल्प भी नहीं है। वस्तुतः यह कटु सत्य है कि सम्पूर्ण विश्व में जल ही ऐसा संसाधन है जो निरन्तर चिन्ता का विषय बन चुका है। वर्तमान में जल संकट के कारण निम्नवत हैं :– जनसंख्या वृद्धि, कम होता वर्षा का परिमाण, बढ़ता औद्योगिकीकरण, बढ़ता शहरीकरण, वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, विलासिता, आधुनिकतावादी एवं भोगवादी प्रवृत्ति, स्वार्थी प्रवृत्ति एवं जल के प्रति संवेदनहीनता, भूजल पर बढ़ती निर्भरता एवं इसका अत्यधिक दोहन, परम्परागत जल संग्रहण तकनीकों की उपेक्षा, समाज की सरकार पर बढ़ती निर्भरता, कृषि में बढ़ता जल का उपभोग।

कृषि कार्यो में जल का अत्यधिक उपयोग होता है। यह भी प्रेक्षित किया गया है कि किसान भाई आधुनिक सिंचाई विधियों से अनभिज्ञ होने के कारण कृषि कार्यों में बहुमूल्य जल को व्यर्थ बहा देते हैं जिससे न केवल जल वरन् विद्युत ऊर्जा का भी अपव्यय ही होता है।

वैज्ञानिकों ने निरन्तर अनुसंधान द्वारा ऐसी सिंचाई विधियां विकसित की हैं जिनसे पानी व ऊर्जा की न केवल बचत ही होती है वरन् कृषि उपज भी अधिक प्राप्त होती है। ये पद्धतियां हैं – फव्वारा एवं बूंद–बूंद सिंचाई पद्धतियां। इन पद्धतियों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि पानी का ह्रास नहीं होता क्योंकि पानी पाइप द्वारा प्रवाहित होता है तथा फव्वारा या बूंद–बूंद रूप में दिया जाता है। इन पद्धतियों से 75 से 95 प्रतिशत तक पानी खेत में फसल को मिलता है, जबकि प्रचलित सतही विधियों में 40 से 60 प्रतिशत ही की फसल को मिल पाता है। इतना ही नहीं, फव्वारा एवं बूंद–बूंद सिंचाई पद्धतियों की खरीद पर सरकार 50 से 75 प्रतिशत तक अनुदान भी देती है।

फव्वारा पद्धति – इस पद्धति में पानी पाइप व फव्वारों द्वारा वर्षा के रूप में दिया जाता है। यह विधि असमतल भूमि के लिए

अति उपयुक्त है। यह विधि 2 से 10 कि.ग्रा./से.मी.^{2} दाब पर काम करती है। नोजल का व्यास 1.5 मि.मी. से 40 मि.मी. तक होता है। इनसे 1.5 लीटर/सेकण्ड से 50 लीटर/सेकण्ड की दर से पानी फव्वारे के रूप में निकलता है। एक फव्वारे द्वारा 6 से 160 मीटर तक क्षेत्रफल सिंचित किया जा सकता है। हमारे देश में बहुधा 6 से 15 मीटर की दूरी तक पानी छिड़कने के सिंचाई फव्वारे उपलब्ध हैं। इन्हें चलाने के लिए 2.5 कि.ग्रा./से.मी.^{2} दबाव की जरूरत होती है। यह विधि बाजरा, गेहूं, सरसों व सब्जियों के लिए अति उपयुक्त पाई गई है। कम लवणीय जल होने पर भी यह विधि उपयोग में लाई जा सकती है, परन्तु अधिक लवणीय जल होने पर यह अनुपयुक्त है। इस विधि द्वारा नाइट्रोजन उर्वरक, कीट एवं कवकनाशक दवाईयों का भी छिड़काव किया जा सकता है।

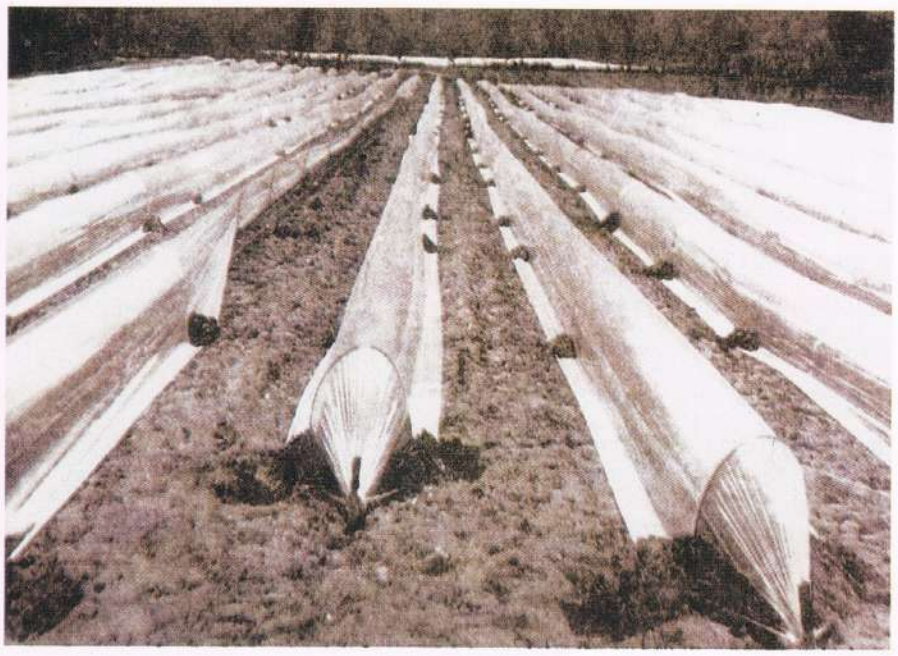

बूंद–बूंद सिंचाई – इस विधि से भी पानी पाइप एवं ड्रिपर इत्यादि से दिया जाता है। सामान्यतया एक ड्रिप 2 से 10 लीटर प्रति घंटा पानी देता है। इस विधि में मुख्य पाइप 50 मि.मी., उपमुख्य पाईप 35 मि.मी. तथा सिंचाई पाइप 12 से 16 मि.मी. व्यास के होते हैं। इस विधि में सिंचाई वाली पाइप भूमि सतह से 30 से 40 से.मी. गहरा रखकर भी सिंचाई की जा सकती है। ड्रिप बंद होने की समस्या को एक प्रतिशत गंधक के तेजाब अथवा नमक के तेजाब (हाइड्रोक्लोरिक अम्ल) का घोल बनाकर ड्रिपर को धोने से दूर की जा सकती है।

इस विधि से मजदूरी, पानी, बिजली तथा रासायनिक उर्वरकों की बचत होती है। काजरी, जोधपुर ने अपने अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध किया है कि यह विधि रेतीली मिट्टी के लिए बहुत ही उपयुक्त है।

तालिका से विदित होता है कि इस पद्धति से 30 से 50 प्रतिशत तक पानी की बचत व डेढ़ से दो गुना अधिक पैदावार मिलती है।

बूंद–बूंद सिंचाई थोड़ी महंगी है। अतः दो पंक्तियों के बीच एक ड्रिप लाईन 1.20 से 1.50 मीटर की दूरी पर डालने से 50 प्रतिशत खर्चा कम किया जा सकता है। इस विधि द्वारा लवणीय पानी भी सब्जियों में दिया जा सकता है।

सिंचाई की कोई भी विधि क्यों न हो, वाष्पोत्सर्जन की अपेक्षा वाष्पीकरण की हानि कम होनी चाहिए। पानी इस तरह से देना चाहिए जिससे अंतः भूमि सतह में कटाई के समय पानी न के बराबर रहे। इसी प्रकार सिंचाई जल की मात्रा इतनी भी ज्यादा न रहे कि भूमि की अन्तःसतह में पानी चला जाए।

उपर्युक्त वर्णित सिंचाई प्रबंधन से हम प्रति इकाई पानी से अधिक पैदावार ले सकते हैं अपने जल स्रोतों को लंबे समय तक प्रयोग में ले सकते हैं। इसके साथ ही भूमि की उर्वराशक्ति को बनाए रख सकते हैं। हमारा दूसरी हरित क्रांति का सपना पानी का सदुपयोग करने से ही पूरा होगा।

सरंध्र कटोरा सिंचाई पद्धति – इस प्रणाली में 500 मि.ली. क्षमता वाले मिट्टी के सरंध्र प्याले (कटोरे) रोपित पौधों के एक किनारे पर मिट्टी में गाड़ दिए जाते हैं। प्रत्येक पौधे के लिए एक

बूंद–बूंद सिंचाई द्वारा विभिन्न फसलों में पानी की बचत व पैदावार

फसल	प्रचलित विधि		बूंद–बूंद विधि	
	पानी की मात्रा (मि.मी.)	पैदावार (टन/हे.)	पानी की मात्रा (मि.मी.)	पैदावार (टन/हे.)
लाल मिर्च	1184	1.93	813	2.94
टमाटर	700	50	350	90
फूल गोभी	240	20	120	26
पत्ता गोभी	240	25	120	33
शलगम	200	16	100	23
आलू	490	20	350	30
मक्का	558	6	360	12

अलग प्याला होता है। मौसम परिवर्तन के आधार पर इन प्यालों को 4–6 दिन के अंतराल पर जल से भर दिया जाता है। मृदा आर्द्रता तनाव के कारण इन सरंध्र कटोरों के बाहर जल रिसाव होता है, जो जड़ क्षेत्र में पौधे के समीप वाली मृदा को नम करते हैं। प्रायः इस विधि का उपयोग अधिक दूरी पर बोई जाने वाली सब्जियों, फलों और वनीय पौधों की सिंचाई के लिए किया जाता है।

अवमृदा सिंचाई – अवमृदा सिंचाई में जड़ क्षेत्र में लगभग 20–25 सेंमी. भू सतह के नीचे जल देने की प्रक्रिया सन्निहित होती है। यह प्रणाली मुख्य रूप से फल एवं वनीय अथवा अन्य पेड़ों की सिंचाई हेतु ही प्रयोग में ली जाती है। इस सिंचाई पद्धति में बहुत अधिक मात्रा में जल, उर्वरक अथवा कीटनाशकों की बचत के साथ ही पौधों की बढ़वार में स्पष्ट रूप से वृद्धि होती है। इस विधि में जो उपकरण उपयोग में लिया जाता है, उसे अवमृदा इन्जेक्टर कहते हैं। यह पैरों के दबाव से चलाया जाने वाला चिकित्सा संबंधी पिचकारी (इंजेक्शन सीरिंज) का विस्तारित रूप है। इस उपकरण में 20 लीटर क्षमता वाले पात्र जिसे प्रवर्तक की पीठ पर या किसी हाथ से चलनेवाली गाड़ी पर ढोया जाता है। तथा इसके द्वारा पौधों को जलापूर्ति की जाती है। इसका उपयोग भी बहुत सरल होता है। इस प्रणाली में वाष्पीकरण द्वारा होने वाली जल की हानि पूर्ण रूप से अवरोधित हो जाती है। इस उपकरण का उपयोग मृदा में रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशी आदि के अनुपयोग

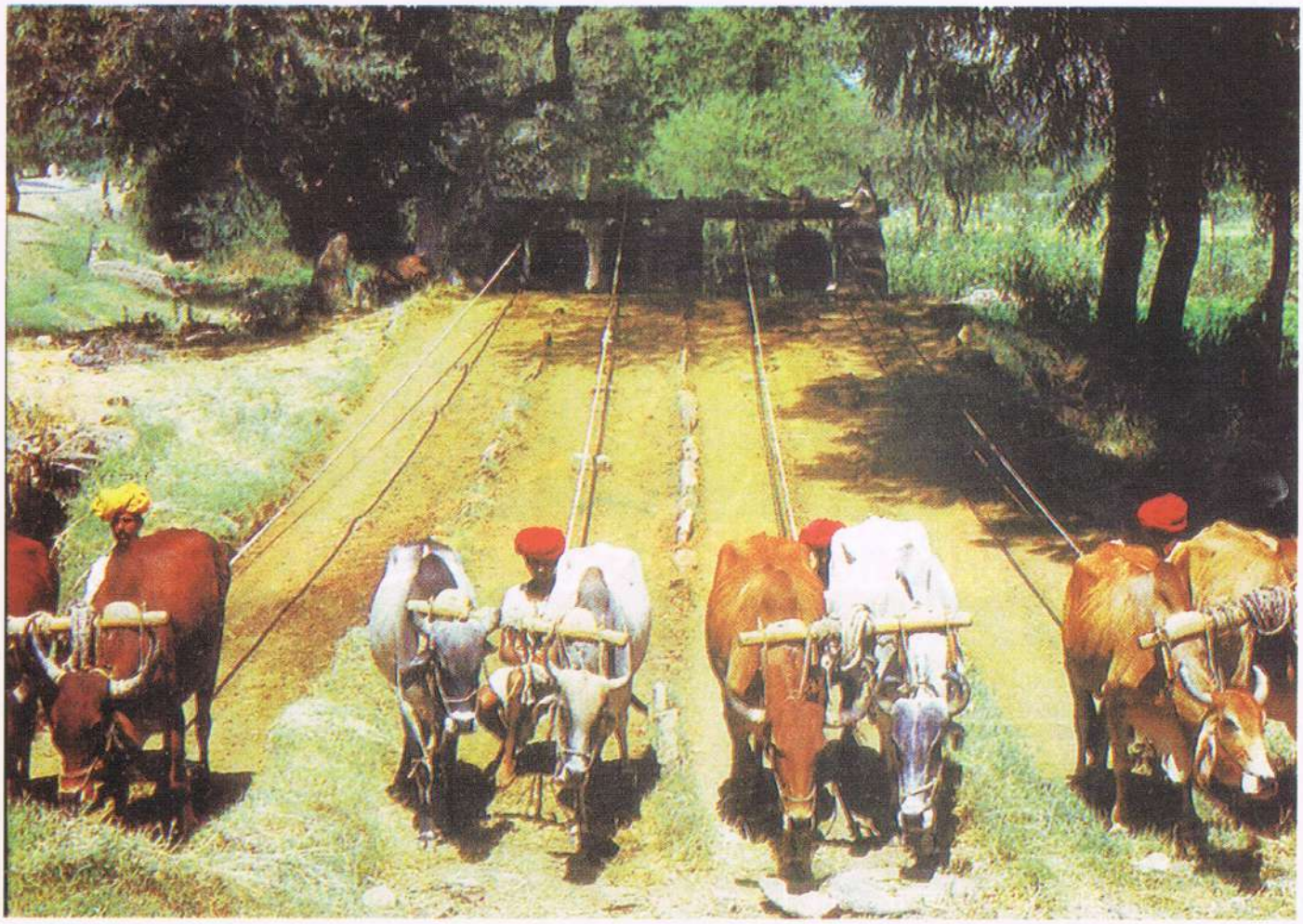

में भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त सतह पर नमी के अभाव में खरपतवार की वृद्धि भी रुक जाती है।

अधिक सिंचाई के दुष्प्रभाव : अधिक सिंचाई के निम्नांकित दुष्प्रभाव हैं –

- हानिकारक लवणों का एकत्रित होना,
- वायु संचार में अवरोध,
- मृदा तापमान में कमी,
- भूमि का दलदलीपन,
- विनाइट्रीकरण एवं
- मृदा संरचना में विकृति।

लवणीय जल से सिंचाई : लवणीय जल को सिंचाई हेतु उपयुक्त बनाने के कुछ सुझाव दिए गए हैं जिन्हें अपनाकर किसान भाई उपज लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

- लवण सहनशील फसलें, जैसे – गेहूं, बाजरा, जौ, पालक, सरसों का अधिक उपयोग करें।
- सिंचाई करते समय फव्वारा एवं बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली को अपनाएं।
- जल निकास की समुचित व्यवस्था रखें एवं हरी खाद का अधिक प्रयोग करें।
- वर्षा के समय खेत में मेड़बंधी कर वर्षा के पानी को एकत्रित करें जिससे लवण घुलकर बाहर आ जाएंगे।
- सिंचाई की संख्या बढ़ाएं तथा प्रति सिंचाई कम मात्रा में जल का प्रयोग करें।
- यदि अच्छे पीने योग्य पानी की सुविधा उपलब्ध है तो लवणीय जल तथा मीठे जल दोनों को मिलाकर भी सिंचाई की जा सकती है।

अतः आशा की जाती है कि किसान भाई सिंचाई की उन्नत विधियों को अपनाकर कृषि में हो रहे जल अपव्यय को रोक सकते हैं।

(लेखक वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं स्वदेशी विज्ञान प्रचारक हैं।)

बदलते समय के साथ बदलती खेती

लोकेश कुमार

किसानों को बेहतर मूल्य दिलाने की बात हर मंच पर उठाई जाती है लेकिन बेहतर उत्पादकता के साथ कम लागत में खेती करके भी किसान अपनी आय बढ़ा सकते हैं। इसी मकसद को हासिल करने के लिए इंदौर के मैकेनिकल इंजीनियर डा. मंगेश करमाकर ने एक योजना बनाई है, जिसे नाम दिया है 'एग्रो पार्क'। उनका कहना है कि हर बूंद और हर उर्वरक के दाने से ज्यादा पैदावार करने के मॉडल का हम किसानों के समक्ष प्रदर्शन करेंगे। इसके फायदे देखने के बाद किसान खुद ही 'एग्रो पार्क' की मूल भावना समझने और इसे अपनाने के लिए आगे आएंगे।

यद्यपि खाद्यान्न आपूर्ति के लिए अब भी अधिकतर भारतीय किसान परम्परागत खेती को ही महत्व देते हैं किन्तु शिक्षित किसानों की पीढ़ी ने कुछ नया करने की सोच के साथ परम्परागत खेती की बजाय बाजार की मांग के अनुरूप खेती करना आरम्भ कर दिया है। उनका मानना है कि बीज, खाद, पानी आदि के खर्चे निकालने के बाद परम्परागत खेती से उन्हें कुछ खास लाभ नहीं हो पाता, इसलिए वे कुछ ऐसी फसलों का चयन कर रहे हैं जिनसे उन्हें निरन्तर अधिक आमदनी होती रहे। इसके अलावा, उन्हें इन फसलों में अपने तकनीकी ज्ञान का उपयोग करने का अवसर भी मिलता है।

एग्रो पार्क : इंदौर के सेंटर फॉर एडवांस टेक्नोलॉजी के रिटायर्ड प्रोफेसर डा. करमाकर का कहना है कि एग्रो पार्क सिर्फ एक विचार है जिसके जरिए खेती का बेहतर तरीका अपनाया जाएगा। किसानों खासकर छोटे किसानों से खेती के लिए उनकी जमीन लेना खासा मुश्किल है क्योंकि दूरदराज के गांवों में रहने वाले किसान बाहरी लोगों के प्रति काफी संशकित रहते हैं। इसलिए डा. करमाकर ने अपने स्तर पर खेती करके अपने मॉडल का प्रदर्शन करने का फैसला किया है। उन्होंने बताया कि शहरों में रहने वाले पांच निवेशकों (मध्यम वर्ग के लोग, जो सिर्फ कुछ लाख रुपये निवेश करने को तैयार हो) का ग्रुप बनाया जाएगा। इस ग्रुप का कुल निवेश करीब 30 से 50 लाख रुपये के बीच होगा। इस पूंजी का करीब दो तिहाई पैसा जमीन खरीदने में खर्च होगा। बाकी पैसा खेती करने के लिए इनपुट और बुनियादी सुविधाएं विकसित करने पर खर्च होगा।

डा. करमाकर के अनुसार फिलहाल वे इंदौर और भोपाल के पास जमीन की तलाश कर रहे हैं। उनकी कोशिश शहर से करीब 100

किलोमीटर दूर सस्ती खेतिहर जमीन खरीदने की है। दूरदराज के इलाके में ही सस्ती जमीन मिल सकेगी और दूरदराज के गांवों में ही किसानों को नई तकनीक की जानकारी की ज्यादा आवश्यकता है। जमीन मिलने के बाद ही उनका मॉडल मूर्तरूप लेना शुरू करेगा। उन्होंने बताया कि एग्रो मॉडल को लागू करने के लिए पांच निवेशकों के समूह को संगठन का रूप दिया जाएगा। एग्रो मॉडल को स्थापित होने में तीन से पांच साल का समय लगेगा। डा. करमाकर के मुताबिक खेती के नए मॉडल का प्रदर्शन छह माह में नहीं हो सकता है। किसानों को प्रेरित करने के लिए जरूरी है कि शहरी निवेशक तीन से पांच साल तक खुद खेती करें। चूंकि शहरी निवेशक शिक्षित होने के अलावा नई तकनीकों से परिचित होंगे, ऐसे में वे खेती के नए प्रयोग कर सकेंगे। उनका कहना है कि एग्रो पार्क के रूप में खेती करने पर कम से कम दस प्रतिशत रिटर्न अवश्य मिलना चाहिए। पहले समूह की शुरुआत के बाद इसका विस्तार होगा। पांच–पांच निवेशकों के समूह 300 गांवों में बनाए जाएंगे। ये समूह अपने स्तर पर अपनी जमीन में खेती करेंगे।

खेती का तरीका : एग्रो मॉडल के अनुसार हर समूह द्वारा करीब 50 हेक्टेयर जमीन पर खेती की जाएगी। इस जमीन में आधी जमीन सिंचित होगी और वास्तव में इसी जमीन पर खेती की जाएगी। बाकी जमीन असिंचित होगी और वहां खेती के बजाय दूसरे ग्रामीण प्रयोग होंगे जिससे खेती में सहूलियत हो। इस जमीन पर रेन वाटर हार्वेस्टिंग, गोबर गैस प्लांट, तालाब आदि के प्रयोग किए जाएंगे। डा. करमाकर का कहना है कि उनका मकसद सिर्फ खेती करना ही नहीं बल्कि ग्रामीण क्षेत्र में पानी और ऊर्जा का संरक्षण भी है। यही वजह है कि अनुपजाऊ जमीन खरीदकर उसके उपयोग का तरीका भी बताया जाएगा। उनका भरोसा है कि 300 गांवों तक समूहों द्वारा 3–5 साल तक खेती किए जाने पर किसानों को अपने आसपास ही नई तकनीक देखने को मिलेगी।

जल संरक्षण : डा. करमाकर का कहना है कि एग्रो पार्क का मूलमंत्र बूंद–बूंद पानी से उत्पादकता हासिल करना है। अनुपजाऊ जमीन लेकर वहां रेन वाटर हार्वेस्टिंग का प्रयोग किया जाएगा। इस जमीन पर तालाब बनाया जाएगा। पानी के बेहतर उपयोग के लिए ड्रिप वाटर सिंचाई की जाएगी।

ऊर्जा के लिए प्रयोग : अनुपजाऊ जमीन पर बायोगैस प्लांट लगाने की भी योजना है। गांवों में गोबर की कहीं कमी नहीं रहती है क्योंकि हर घर में पशुपालन आम बात है। गोबर और दूसरी वस्तुओं से बिजली पैदा की जा सकती है। सरकारी योजनाओं के तहत गांवों में गोबर गैस प्लांट तो लगे लेकिन तकनीकी जानकारी के अभाव और सही ढंग से रखरखाव न होने के कारण आधे से ज्यादा प्लांट बंद पड़े हैं। एग्रो पार्क के तहत समूह ऊर्जा क्षेत्र में प्रयोग करेगा। इस ऊर्जा से ही खेती की गतिविधियां चलाई जाएंगी।

डा. करमाकर ने बताया कि खेती की पैदावार बढ़ाकर लागत में कमी लाई जा सकती है। लागत घटेगी तो निश्चित ही इससे रिटर्न बेहतर होगा। एग्रो पार्क के समूहों की सफलता के बाद किसान नई तकनीक अपनाने के लिए प्रेरित होंगे।

शेड नेट में सब्जियों की अगेती खेती – बेमौसमी सब्जियां जैसे गोभी, हरा धनिया, टमाटर, हरी मिर्च और बैंगन की खेती शेड नेट में गर्मियों के मौसम में भी हो सकती है। आमतौर पर सर्दियों में उगने वाली इन सब्जियों की बुवाई–रोपाई अगस्त के बाद होती है लेकिन शेड नेट के जरिए उच्च तापमान से पौधों को बचाकर ये सब्जियां करीब एक महीना पहले यानी जून–जुलाई में उगाई जा सकती हैं। ये सब्जियां सितंबर में ही तैयार हो जाएंगी। जल्दी फसल आने पर बाजार में इनका बेहतर मूल्य मिलेगा।

गर्मी होने के कारण धनिया और गोभी की फसल मौसम का तापमान घटने से पहले उगाना आसान नहीं होता है। लेकिन गर्मियों के दौरान इनकी बुवाई और अगेती फसल लेने के लिए शेड नेट का घर बेहतर विकल्प है। शेड नेट के घर में मई–जून की भीषण गर्मी में भी इनकी बुवाई की जा सकती है। इसकी वजह यह है कि शेड नेट के घर में 75 फीसदी छाया रहने से बीज और पौधे जलने से बच जाते हैं। शेड नेट के घर को चार वर्ष तक उपयोग किया जा सकता है। इसकी लागत दो सीजन में निकल आती है। वहीं मई में बुवाई करने से गर्मियों में धनिया और दीपावली पर गोभी की फसल तैयार हो जाती है। इसके अलावा जून में टमाटर, हरी मिर्च और बैंगन के पौधे उगाए जा सकते हैं। इस तरह ये फसलें सामान्य समय से करीब एक माह पहले तैयार हो सकती हैं।

उपयुक्त इलाके : जयपुर स्थित दुर्गापुरा कृषि अनुसंधान के अनुसंधानकर्ता डॉ. एस. मुखर्जी के अनुसार जिन इलाकों में दोमट या चिकनी मिट्टी हो, वहां ऑफ सीजन में धनिया व गोभी की पैदावार की जा सकती है। इस लिहाज से राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश समेत कई इलाकों में ऑफ सीजन में गोभी व धनिया की पैदावार की जा सकती है।

शेड नेट बनाने का तरीका : अगेती गोभी व धनिया की पैदावार के लिए खेत में एक हजार वर्गमीटर में शेड नेट का घर तैयार करना होता है। शेड नेट का घर बनाने के लिए लोहे के पाइप या बांस के सहारे से करीब छह फीट ऊंचा ढांचा तैयार किया जाता है। इस ढांचे को शेड नेट से ढक दिया जाता है। शेड नेट बाजार में 20–25 रुपये प्रति मीटर की कीमत पर मिल जाता है। शेड नेट के घर में 75 फीसदी छाया रहने से तेज गर्मी में बीज व पौधे जलते नहीं हैं।

खेती करने की विधि : शेड नेट के घर में क्यारियां बनाकर बीजों को लाइन से बोया जाता है। लेकिन लाइन से बीज बोने से पहले क्यारियों में प्रति वर्ग मीटर में 15 किलो जीवाणु खाद डालना जरूरी है। जीवाणु खाद तैयार करने के लिए प्रति सौ किलो गोबर की खाद में दो सौ ग्राम ट्राइकोडर्मा मिलाकर किसी छायादार स्थान पर करीब बीस दिन के लिए रखते हैं। इसके साथ जीवाणुओं को पनपने देने के लिए खाद में नमी रखनी पड़ती है। तैयार खाद को क्यारियों में डालने के बाद बीजों को ट्राइकोडर्मा या केप्टन या थाइरम से उपचारित कर लाइन से बोने के साथ क्यारियों में रोजाना पानी देना जरूरी है। धनिया के बीजों की मोटी दाल बनाकर इनको एक दिन पानी में भिगोने से अंकुरण जल्दी होता है। गोभी की फसल के लिए प्रति हेक्टेयर आधा किलो बीज उपचारित करने के लिए प्रति एक किलो बीज में तीन ग्राम केप्टन या थाइरम का उपयोग करना पड़ता है। इस तरीके से महीने भर में गोभी के पौधे तैयार हो जाते हैं। इन पौधों को खेत में प्रत्यारोपित कर हर तीसरे दिन पानी देने से इन पौधों में अक्टूबर–नवंबर में फूल आ जाते हैं।

अगेती खेती का फायदा : मई में बीज बोने से सामान्य समय से करीब एक–डेढ़ महीने पहले अर्थात् अक्टूबर–नवंबर में ही गोभी की फसल तैयार हो जाती है। वहीं धनिया उगने में करीब एक महीना लगता है अर्थात् जून में धनिया उग आता है। इन दोनों को एक साथ बोने से एक फायदा यह भी है कि किसानों को एक महीने बाद से कमाई मिलनी शुरू हो जाती है।

उल्लेखनीय है कि गर्मी के दौरान धनिया आसानी से उपलब्ध नहीं होता है। इसलिए गर्मियों में धनिया के मुंहमांगे दाम मिल जाते हैं। इसी तरह त्यौहारी सीजन के दौरान सब्जियों में गोभी भी हॉट आइटम रहती है।

पैकिंग का रखें ध्यान : पैकिंग पर ध्यान देने से खासकर गोभी को खराब होने से बचाया जा सकता है। आमतौर पर गोभी के फूलों को टोकरों में घास–फूस डालकर या जूट के बारदाने में पैक किया जाता है। इससे गोभी के फूल काले पड़ने के साथ खराब होने की आशंका रहती है। लेकिन गोभी के फूलों को टोकरों में कागज की कतरन या नरम कपड़ा डालकर पैक करें तो यह खराब नहीं होगी और दाम अच्छे मिलेंगे।

गुग्गल की खेती – गुग्गल एक छोटा पेड़ है जिसके पत्ते छोटे और एकान्तर सरल होते हैं। यह सिर्फ वर्षा ऋतु में ही वृद्धि करता है तथा इसी समय इस पर पत्ते दिखाई देते हैं। शेष समय यानी सर्दी तथा गर्मी के मौसम में इसकी वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है तथा पर्णहीन हो जाता है। सामान्यतः गुग्गल का पेड़ 3–4 मीटर ऊंचा होता है।

इसके तने से सफेद रंग का दूध निकलता है जो इसका उपयोगी भाग है। प्राकृतिक रूप से गुग्गल भारत के कर्नाटक, राजस्थान, गुजरात तथा मध्य प्रदेश राज्यों में उगता है। भारत में गुग्गल विलुप्तावस्था के कगार पर आ गया है, अतः बड़े क्षेत्रों में इसकी खेती करने की जरूरत है। हमारे देश में गुग्गल की मांग अधिक तथा उत्पादन कम होने के कारण अफगानिस्तान व पाकिस्तान से इसका आयात किया जाता है।

गुग्गल उगाने के लिए जलवायु एवं भूमि : गुग्गल उगाने के लिए उष्णकटिबंधीय, कम वर्षा वाले तथा शुष्क जलवायु वाले क्षेत्र उपयुक्त होते हैं। यह अन्य छायादार वृक्षों के साथ अधिक वृद्धि करता है। अतः इसे वनों या बगीचों में, खेतों की मेढों पर, छायादार पेड़ों के नीचे फैंसिंग के रूप में लगाया जा सकता है। रेतीली, पहाड़ी मृदा जिसमें जल निकास अच्छा हो, इसके लिए बहुत उपयुक्त है। यह शुष्क स्थानों में भी अच्छी वृद्धि करता है, इसलिए असिंचित क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है। गुग्गल भूक्षरण या परती भूमि के विकास हेतु उपयुक्त है।

गुग्गल की बुआई : बीज से गुग्गल की बुआई करने पर बहुत ही कम (सिर्फ 5) पौधे तैयार होते हैं, इसलिए गुग्गल संवर्धन ज्यादातर कलमों से ही किया जाता है। जून–जुलाई में करीब 10 मिलिमीटर मोटाई की मजबूत कलमें काटकर नर्सरी में पोलीबैग में एक वर्ष के लिए रखते हैं जिन्हें एक वर्ष बाद खेत में रोपित करते हैं। सिंचित दशा में रोपाई का काम फरवरी तक किया जा सकता है। पौधे से पौधे की दूरी एक मीटर तथा कतार से कतार की दूरी दो मीटर रखते हैं। एक एकड़ में लगभग दो हजार पौधे रोपित किए जाते हैं।

गुग्गल की देखभाल : रोपाई के समय प्रति पौधा दस किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद देने से पौधों का अच्छा विकास होता है। खाद में नीम की खली मिलाकर डालने से दीमक से बचाव हो जाता है। पौधे रोपित करने के प्रथम वर्ष में एक–डेढ़ माह के अंतर से पानी देना चाहिए। इसके बाद सामान्यतः सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। गुग्गल को सामान्यतः अधिक निराई की आवश्यकता नहीं होती। समय–समय पर गुड़ाई करके पौधों के आसपास की भूमि को भुरभुरा बनाना चाहिए।

उपज व आय : गुग्गल के पौधों से पहली उपज करीब 8 वर्ष बाद प्राप्त होती है। इसके मुख्य तने को छोड़कर इसकी शाखाओं में चीरा लगाकर सफेद दूध या गोंद प्राप्त किया जाता है। एक पेड़ की छंटाई से शुरुआत में सोलवेंट प्रोसेस के द्वारा 600 ग्राम से एक किलोग्राम तक शुद्ध गुग्गल प्राप्त होता है जिसकी मात्रा हर कटाई के बाद, पेड़ की उम्र के साथ लगातार बढ़ती रहती है। सोलवेन्ट

प्रोसेस से निकाले गए गुग्गल की शुद्धता चूंकि 100 प्रतिशत रहती है, अतः इसका बाजार भाव लगभग 250 रुपये प्रति किलो तक मिल जाता है। चूंकि यह जंगलों से तेजी से विलुप्त हो रहा है तथा इसका प्रयोग बढ़ रहा है अतः इसके बाजार भाव में लगातार तेजी की उम्मीद है।

एक एकड़ क्षेत्र में करीब 2000 पौधे लगाए जा सकते हैं। प्रत्येक पौधे से अगर हम एक साल छोड़कर फसल लें तो 800 ग्राम औसत शुद्ध गुग्गल के हिसाब से करीब 2 लाख रुपये प्रति एकड़ प्रति वर्ष की आय प्राप्त होगी जिसमें हर साल तीव्र वृद्धि होती रहेगी। जो किसान इसे पूरे खेत में नही उगाना चाहते वे मेढ़ के सहारे 2 या 3 लाईन में लगा सकते हैं। गुग्गल की अच्छी किस्म आसानी से नहीं मिलती। अतः ध्यान से अच्छी किस्म के पौधे खरीदने चाहिए। इससे जल्दी उपज प्राप्त करने के लिए बड़े पौधे लगाये जा सकते हैं।

सर्पगंधा की खेती – सर्पगंधा एक अत्यन्त उपयोगी पौधा है। यह 75 सेमी. से 1 मीटर ऊंचाई तक बढ़ता है। इसकी जड़ें सर्पिल तथा 0.5 से 2.5 सेमी. व्यास तक होती हैं तथा 40 से 60 सेमी. गहराई तक जमीन में जाती हैं। इस पर अप्रैल से नवम्बर तक लाल–सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं। सर्पगंधा की जड़ों में बहुत से एल्कलाईडूस पाए जाते हैं जिनका प्रयोग रक्तचाप, अनिद्रा, उन्माद, हिस्टीरिया आदि रोगों के उपचार में होता है। इसका उपयोगी भाग जड़ें ही हैं। सर्पगंधा 18 माह की फसल है। इसे बलुई दोमट से लेकर काली मिट्टी में उगाया जा सकता है।

उगाने के लिए खेत की तैयारी : जड़ों की अच्छी वृद्धि के लिए मई माह में खेत की गहरी जुताई करें तथा खेत को कुछ समय के लिए खाली छोड़ दें। पहली वर्षा के बाद खेत में 10–15 गाड़ी प्रति हेक्टेयर से हिसाब से गोबर को डालकर फिर से जुताई कर दें। पटेला से खेत एकसार करने के बाद उचित नाप की क्यारियां तथा पानी देने के लिए नालियां बना दें। सर्पगंधा को बीजों के द्वारा अथवा जड़, स्टम्प या तने की कटिंग द्वारा उगाया जाता है। सामान्य पी एच वाली जमीन से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

बीज द्वारा बुआई : अच्छे जीवित बीजों को छिटक कर बोया जा सकता है। अच्छे बीजों के चुनाव के लिए उन्हें पानी में भिगो कर भारी बीज (जो पानी में बैठ जाएं) तथा हल्के बीजों को अलग कर दिया जाता है। भारी बीजों को बोने के लिए 24 घंटे बाद प्रयोग करते हैं। सर्पगंधा के 30 से 40 प्रतिशत बीज ही उगते हैं, इसलिए एक हेक्टेयर में करीब 6–8 किलो बीज की आवश्यकता होती है। इसका बीज काफी महंगा होता है। अतः पहले नर्सरी बनाकर पौध तैयार करनी चाहिए। इसके लिए मई के पहले सप्ताह में 10 गुना 10 मीटर की क्यारियों में पकी गोबर की खाद डालकर छायादार स्थान पर पौध तैयार करनी चाहिए। बीजों को 2 से 3 सेमी. जमीन के नीचे लगाकर पानी लगाते हैं। 20 से 40 दिन के अन्दर बीज उपजना शुरु हो जाते हैं। मध्य जुलाई में पौधे रोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

जड़ों द्वारा बुआई : लगभग 5 सेमी. जड़ कटिंग को फार्म खाद, मिट्टी व रेत मिलाकर लगाया जाता है। इसे उचित मात्रा में पानी लगाकर नम रखा जाता है। तीन सप्ताह में जड़ों से किल्ले फूटने लगते हैं। इनको 4530 सेमी. दूरी पर रोपित किया जाता है। एक हेक्टेयर के लिए लगभग 100 कि.ग्रा. जड़ कटिंग की आवश्यकता होती है।

तने द्वारा बुआई : 15 से 22 सेमी. की तना कटिंग को जून माह में नर्सरी में लगाते हैं। जब जड़ें व पत्तियां निकल आएं तथा उनमें अच्छी वृद्धि होने लगे तो कटिंग को निकालकर खेतों में लगाया जा सकता है।

खाद तथा सिंचाई : करीब 20 से 25 टन कम्पोस्ट खाद प्रति हेक्टेयर से अच्छी उपज प्राप्त होती है। वर्षा के दिनों में कम पानी

तथा गर्मियों में 20 से 30 दिन के अन्तर से पानी लगाना चाहिए।

फसल प्रबन्धन : सर्पगंधा की फसल 18 महीने में तैयार हो जाती है। जड़ों को सावधानी से खोदकर निकाला जाता है। बड़ी व मोटी जड़ों को अलग तथा पतली जड़ों को अलग करते हैं तथा पानी से धोकर मिट्टी साफ करनी चाहिए। फिर 12 से 15 सेमी. के टुकड़े काटकर सुखा दें। सूखी जड़ों को पॉलिथीन की थैलियों में सुरक्षित रखा जाता है।

उपज व आय : अनुमानतः एक एकड़ से 7–9 क्विंटल शुष्क जड़ें प्राप्त हो जाती हैं। सूखी जड़ों का बाजार भाव लगभग 150 रुपये प्रति किलो है। चूंकि यह जंगलों से तेजी से विलुप्त हो रही है, अतः इसके बाजार भाव में लगातार तेजी की उम्मीद है।

अरण्डी की खेती : अरंडी तेल का पेड़ एक पुष्पीय पौधा है। इस पौधे की बारहमासी झाड़ी होती है। इसकी चमकदार पत्तियां लंबी, हथेली के आकार की, गहरी पीली और दांतेदार हाशिए की तरह होती हैं। इनके रंग कभी–कभी गहरे हरे रंग से लेकर लाल रंग या गहरे बैंगनी या पीतल लाल रंग तक के हो सकते हैं। तना और जड़ के खोल भिन्न–भिन्न रंग लिए होते हैं। इसके उद्‌गम व विकास की कथा अभी तक शोध का विषय है। यह पेड़ मूलतः दक्षिण–पूर्वी भूमध्य सागर, पूर्वी अफ्रीका एवं भारत की उपज है, किन्तु अब उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में खूब पनपा और फैला हुआ है।

अरण्डी का बीज ही बहुप्रयोगनीय कैस्टर ऑयल (अरण्डी के तेल) का स्रोत होता है। बीज में तेल उपस्थित होता है जिसमें ट्राईग्लाइसराइड्स, खासकर रिसिनोलीन होती है। इस बीज में रिसिन नामक एक विषैला पदार्थ भी होता है जो लगभग पेड़ के सभी भागों में उपस्थित रहता है। अरण्डी का तेल साफ, हल्के रंग का होता है, जो अच्छे से सूखकर कठोर हो जाता है और गंध से मुक्त होता है। यह शुद्ध एल्कालोइड्स के लिए एक उत्कृष्ट सॉल्वेंट के रूप में नेत्रशल्य चिकित्सा में प्रयुक्त होता है।

यह मुख्य रूप से कृत्रिम चमड़े के विनिर्माण में उपयोग होता है। यह कृत्रिम रबर में एक आवश्यक घटक है। इसका सबसे बड़ा प्रयोग पारदर्शी साबुन के निर्माण में होता है। इसके अलावा इसके औषधीय प्रयोग भी होते हैं। यह अस्थायी कब्ज में, अपचयोग में काम आता है और यह बच्चों और वृदों के लिए विशेष उपयोगी होता है। यह पेट के दर्द और तीव्र दस्त में प्रयोग किया जाता है। अरण्डी तेल बाह्य रूप में दाद, खुजली आदि विभिन्न रोगों के लिए विशेष उपयोगी होता है। इसके ताजा पत्तों को कैनरी द्वीप में नर्सिंग माताओं द्वारा एक बाहरी अनुप्रयोग के रूप में, दूध का प्रवाह बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है।

यह आंखों में जलन को दूर करने के लिए डाला जाता है। लीमू मरहम के साथ संयुक्त रूप में यह आम कुष्ठ में एक सामयिक आवेदन के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके सर्वोच्च उत्पादकों में भारत, चीन एवं ब्राजील हैं। इनके अलावा इथोपिया में भी इसका उत्पादन होता है। वहां बहुत से ब्रीडिंग कार्यक्रम भी सक्रिय हैं। भारत अरण्डी के उत्पादन में सबसे आगे है, जिसके बाद चीन और ब्राजील आते हैं।

प्याज के बीजों का उत्पादन – उत्तर भारत में रबी सीजन के दौरान अक्सर प्याज के बीजों की किल्लत हो जाती है। इतना ही नहीं, बेहतर क्वालिटी के बीज नहीं मिलने से किसानों की प्याज की पैदावार प्रभावित होती है। इसकी एक वजह यह है कि आज भी करीब अस्सी फीसदी प्याज के बीजों की सप्लाई महाराष्ट्र से ही होती है। वहां से पर्याप्त बीज सप्लाई न हो पाने की स्थिति में घटिया क्वालिटी के बीज बाजार में

पहुंचने लगते हैं। उत्तर भारत खासकर राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश के अर्धशुष्क इलाकों के किसान रबी सीजन के लिए बेहतर किस्म के प्याज क़े बीज खुद तैयार कर सकते हैं। इस तरह न सिर्फ अपनी जरूरत पूरी कर सकते हैं बल्कि व्यावसायिक स्तर पर बीज का उत्पादन करके इससे आय भी हासिल कर सकते हैं। एक रोचक तथ्य यह भी है कि अप्रैल, मई व जून को छोड़कर वर्ष में नौ महीने प्याज महंगा ही बिकता है। ऐसे में प्याज की अगैती या पछैती खेती करके भी किसान लाभ पा सकते हैं। ऐसे में प्याज के बीज तैयार करने से 'आम के आम गुठलियों के दाम' वाली कहावत चरितार्थ हो जाएगी।

बीज तैयार करने विधि : वैसे तो प्याज के बीज तैयार करने की कई विधियां हैं। उदाहरण के तौर पर बीज से बीज तैयार करना और प्याज की गांठ (कंध) से बीज तैयार हो सकते हैं। बीज से बीज तैयार करने की एक वर्षीय विधि और गांठ से बीज तैयार करने की दो वर्षीय विधि है। बेहतर किस्म के बीजों के लिए प्याज की गांठ से बीज तैयार करना ही उपयुक्त होगा। गांठ से बीज तैयार करने की एक वर्षीय विधि के तहत मई–जून में नर्सरी में बीजों को बोया जाता है। इसके बाद तैयार पौधों को जुलाई–अगस्त में खेत में लगा दिया जाता है। नवंबर तक इन पौधों में कंध अर्थात् गांठ तैयार हो जाती है। तब इनको उखाड़ लेना चाहिए। इनमें से बढ़िया किस्म की गांठों को छांटकर अलग कर लेना चाहिए। फिर पंद्रह–बीस दिन बाद छांटी गई गांठों को पुनः खेत में लगा दिया जाता है। इससे मई तक बीज तैयार हो जाएंगे।

इस विधि के तहत तैयार होने वाले एन–53, एग्री फाउंड डार्क रेड तथा अर्का कल्याण किस्म के बीजों का उपयोग केवल

खरीफ सीजन में प्याज उगाने के लिए किया जा सकता है। लेकिन गांठ से बीज तैयार करने की दो वर्षीय विधि के तहत रबी सीजन के लिए प्याज के बीज तैयार किए जा सकते हैं। इस विधि के तहत अक्टूबर–नवंबर में नर्सरी में बीजों को बोया जाता है। इन बीजों से दिसंबर के मध्य तक पौधे निकल आते हैं। इनको नर्सरी से उखाड़कर मध्य दिसंबर से मध्य जनवरी तक खेत में लगा देना चाहिए। ऐसा करने से मई के अंत तक इन पौधों में कंध तैयार हो जाते हैं। इन गांठों को उखाड़कर सही आकार की अच्छी गांठों की छंटनी कर लेनी चाहिए। छांटी गई गांठों को सुखाकर भंडारण कर लिया जाता है। इन कंधों को कवकनाशक घोल में 15–20 मिनट डुबोकर नमी रहित हवादार स्थान पर रखने से ये खराब नहीं होंगे। अक्टूबर–नवंबर में इन गांठों को खेत में लगा दिया जाता है। इनसे मई तक बीज तैयार हो जाते हैं। इस विधि में डेढ़ वर्ष का समय लगता है लेकिन इस तरह से तैयार बीजों से नलीदार प्याज उगने की समस्या से भी छुटकारा मिलता है। इस विधि से पूसा रेड, एग्रीफाउंड लाइट रेड, नासिक रेड, उदयपुर–101, पूसा व्हाइट राउंड और उदयपुर–102 किस्म के बीज तैयार हो जाते हैं।

बीज उत्पादन : ड्रिप सिंचाई विधि के तहत अगर बीज तैयार किए जाएं तो बीजों की किस्म और बेहतर होगी। एक अनुमान के मुताबिक एक हेक्टेयर में आठ से दस क्विंटल बीज का उत्पादन होता है। बीज तैयार करने के लिए प्याज की खेती की तरह ही खाद व कीटनाशक का उपयोग करना पड़ता है। किसान चाहें तो प्याज की फसल के साथ बीज भी तैयार कर सकते हैं लेकिन बीज वाले हिस्से को फसल के हिस्से से अलग रखना होगा।

प्याज के बीजों का दाम : बाजार में प्याज़ के बीज के दाम एक हजार रुपये क्विंटल तक हैं। वहीं खाने योग्य प्याज बाजार में 400–500 रुपये प्रति क्विंटल तक बिकती है। इस तरह किसान प्याज की पैदावार के साथ बीज तैयार कर दोहरा मुनाफा ले सकता है।

अदरक की पैदावार – अदरक प्राचीनतम मसालों में से एक है तथा इसे अनूठे स्वाद और तीखेपन के लिए जाना जाता है। इसके अनेक उपयोग हैं जिसमें मृदु पेय पदार्थों में स्वाद के लिए उपयोग, रसोई में उपयोग, अल्कोहलिक और गैर–अल्कोहलिक पेय पदार्थ, कन्फैक्शनरी, अचार और दवाईयों को बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। भारत अदरक का सबसे बड़ा उत्पादक होने के साथ–साथ दुनिया में सूखे अदरक यानी सौंठ का भी सबसे बड़ा उत्पादक है। जिन अन्य देशों में अदरक की व्यापक पैमाने पर खेती की जाती है उनमें वेस्टइंडीज, ब्राजील, चीन, जापान और इंडोनेशिया शामिल हैं। भारत में केरल, उड़ीसा,

आन्ध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मेघालय और पश्चिम बंगाल प्रमुख अदरक उत्पादक राज्य हैं। केरल में अदरक उत्पादन का लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र उपलब्ध है और यह राज्य देश के कुल अदरक उत्पादन में 25 प्रतिशत का योगदान देता है। कंद को नमी की 11 प्रतिशत मात्रा के स्तर तक सुखा लिया जाता है तथा भंडारित कीटों के संक्रमण से बचाव के लिए उन्हें अच्छी तरह से भंडारित किया जाता है। लम्बे समय तक सूखे अदरक का भंडारण वांछनीय नहीं है। किस्म तथा फसल कहां उगाई गई है, इस पर ताजे अदरक के मुकाबले 16–25 प्रतिशत उत्पादन निर्भर करता है।

भारत के पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्रों में मानसून की वर्षा से पहले हुई बारिश के साथ ही अदरक की बुवाई का सर्वश्रेष्ठ समय मई के पहले पखवाड़े में है। सिंचित परिस्थितियों के तहत इसकी रोपाई अग्रिम में फरवरी के मध्य या मार्च की शुरुआत में की जा सकती है। केरल में आमतौर पर अदरक के लिए कसावा, लालमिर्च, चावल, जिंजेली, रागी, मूंगफली और मक्का का फसल चक्र अपनाया जाता है। अदरक की खेती मक्का के साथ मिश्रित फसल के रूप में भी की जाती है तथा इसे नारियल और सुपारी के बागानों में अंतवर्ती फसल के रूप में भी उगाया जाता है।

अदरक हल्के गर्म एवं आर्द्र वातावरण में अच्छी तरह से बढ़ता है। इसकी खेती समुद्र तल से 1500 मीटर तक की ऊंचाई पर की जाती है। हालांकि इसकी सफल खेती के लिए और अधिकतम पैदावार के लिए समुद्र तल से 300 से 900 मीटर की ऊंचाई सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। बुवाई से लेकर अंकुरण तक थोड़ी वर्षा की आवश्यकता होती है तथा बढ़वार की अवधि में भारी तथा अच्छी बारिश की आवश्यकता होती है तथा इसकी सफल खेती के लिए फसल की खुदाई से लगभग एक महीने पहले शुष्क मौसम लाभकारी होता है। जल्दी बुवाई से फसल की अच्छी बढ़वार तथा पौधे के विकास और अधिक उपज में मदद मिलती है।

इस फसल की खेती के लिए उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता होती है जिसमें जल निकासी तथा वायु संचारण की अच्छी व्यवस्था हो। यह बलुई या चिकनी दोमट, लाल दोमट तथा लैटरीक दोमट मिट्टी में अच्छी बढ़वार हासिल करती है। रोगों की रोकथाम के लिए जल निकासी की अत्यधिक आवश्यकता है। अदरक की खेती एक ही खेत में साल–दर–साल नहीं करनी चाहिए। मल्चिंग से अंकुरण बढ़ता है, जैविक तत्वों की बढ़ोतरी होती है, मृदा में नमी का संरक्षण होता है तथा भारी वर्षा के कारण होने वाले मिट्टी के बहाव को रोकने में मदद मिलती है।

फसल में आमतौर पर दो बार खरपतवार प्रबंधन किया जाना चाहिए। पहला खरपतवार प्रबंधन दूसरी मल्चिंग से पहले तथा इसके बाद खरपतवार की सघनता के आधार पर किया जाना चाहिए। अगर आवश्यक हो तो तीसरी बार भी खरपतवार नियंत्रण किया जाना चाहिए। अदरक के बेड की मल्चिंग से मिट्टी एवं जल संरक्षण में मदद मिलती है। पहली मल्चिंग रोपाई के समय 12.5 टन हरी पत्ती प्रति हेक्टेयर की दर से की जानी चाहिए और दूसरी 40 दिनों बाद 5 टन हरी पत्तियों के प्रयोग से की जानी चाहिए।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार एवं कृषि विशेषज्ञ हैं।)
ई–मेल : kumar88@yahoo.com

कुरुक्षेत्र मंगवाने का पता
विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड–4, तल–7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

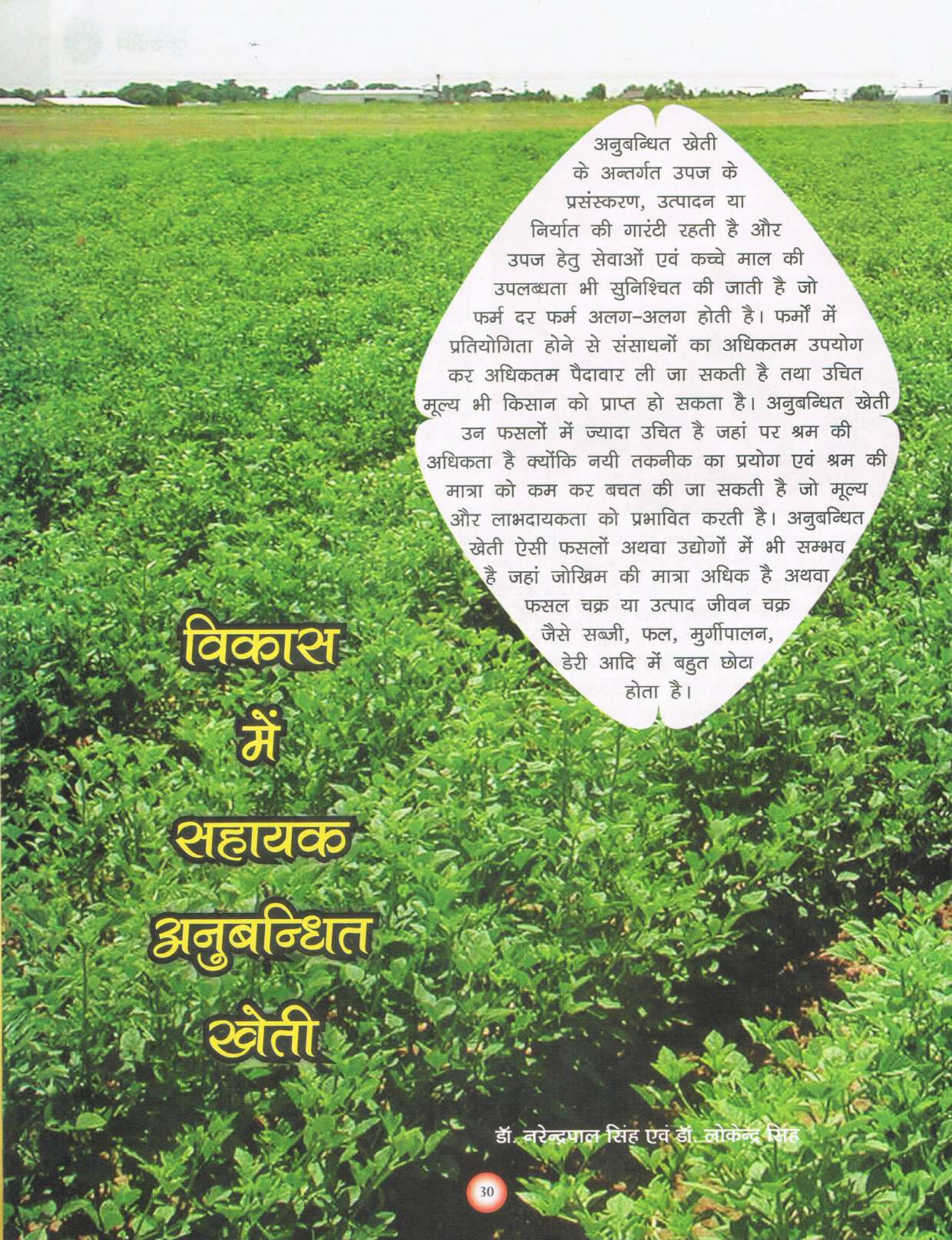

विकास में सहायक अनुबन्धित खेती

अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत उपज के प्रसंस्करण, उत्पादन या निर्यात की गारंटी रहती है और उपज हेतु सेवाओं एवं कच्चे माल की उपलब्धता भी सुनिश्चित की जाती है जो फर्म दर फर्म अलग-अलग होती है। फर्मों में प्रतियोगिता होने से संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर अधिकतम पैदावार ली जा सकती है तथा उचित मूल्य भी किसान को प्राप्त हो सकता है। अनुबन्धित खेती उन फसलों में ज्यादा उचित है जहां पर श्रम की अधिकता है क्योंकि नयी तकनीक का प्रयोग एवं श्रम की मात्रा को कम कर बचत की जा सकती है जो मूल्य और लाभदायकता को प्रभावित करती है। अनुबन्धित खेती ऐसी फसलों अथवा उद्योगों में भी सम्भव है जहां जोखिम की मात्रा अधिक है अथवा फसल चक्र या उत्पाद जीवन चक्र जैसे सब्जी, फल, मुर्गीपालन, डेरी आदि में बहुत छोटा होता है।

डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह एवं डॉ. लोकेन्द्र सिंह

देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् से अभी तक कृषि एवं खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है जो लगभग चार गुना है लेकिन उसका पूरा फायदा देश के किसानों को न होकर बड़ी कम्पनियां उपज को खरीदकर पुनःप्रक्रिया कर उठा रही हैं। जिस गति से देश की जनसंख्या बढ़ी है उसके अनुरूप अभी तक हम उत्पादन करने में सक्षम रहे हैं किन्तु आने वाले कल के लिए हमें पुनः विचार की आवश्यकता है। परिवारों का निरन्तर विभाजीकरण होने से अधिकांश किसान सीमान्त श्रेणी में आ गए हैं। अतः उनके लिए कृषि की आधुनिक तकनीक, बीज, खाद, रसायनों का प्रयोग धन एवं ज्ञान के अभाव में सम्भव नहीं हो पा रहा है। यदि बड़े पैमाने पर खाद्यान्न उत्पादन के स्थान पर नकदी फसलें जैसे सब्जी एवं फल, औषधीय खेती, डेरी, बागवानी आदि का उत्पादन करें तो किसान को कई गुना लाभ होगा किन्तु किसान के सम्मुख समस्या विपणन की है। अतः विपणन के लिए कृषि को यदि बढ़ावा देते हैं तो उनको कच्चे माल की समय आधारित गुणवत्तापूर्ण नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करनी होगी। किसानों के सम्मुख समस्या यह होती है कि जब फसल तैयार होती है तो उसके दाम गिर जाते हैं और धनाभाव एवं गोदामों के अभाव में फसल बेचना उनकी मजबूरी होती है जबकि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को कच्चे माल की आपूर्ति निरन्तर नहीं हो पाती। यहां तक कि इन उद्योगों की कुछ इकाईयों को तो 10 से 20 प्रतिशत तक ही कच्चा माल मिल पाता है और कुछ समय बाद ये इकाईयां बंद हो जाती हैं और किसानों के सम्मुख पुनः विपणन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अतः कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की इस समस्या को नजदीक से देखने की आवश्यकता है और जिसका हल प्रसंस्करण उद्योग खेती उद्योग के साथ अनुबन्ध कर ही निकाला जा सकता है।

अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत किसान तथा फर्म/एजेन्सी के बीच एक अनुबन्ध होता है जिसमें किसान को पूर्व निर्धारित मूल्य पर अपनी समस्त कृषि/बागवानी उत्पादन की आपूर्ति फर्म को करनी होती है। इसके अन्तर्गत अनुबन्ध की शर्तें पैदा की जाने वाली फसलों की प्रकृति, प्रयुक्त तकनीक तथा कृषि में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार बदलती रहती है। कृषक को सम्बन्धित वस्तुओं की मात्रा और गुणवत्ता को ध्यान में रखकर निर्धारित समय के अनुरूप आपूर्ति सुनिश्चित करनी होती है जबकि अनुबन्धित फर्मों को पूर्व निर्धारित मूल्य एवं प्रक्रिया के अनुरूप किसान को भुगतान सुनिश्चित करना होता है। साथ ही अनुबन्धित फर्म अनुबन्ध के अनुरूप किसान को साख, नवीनतम तकनीक, बीज एवं खाद प्रदान करते है। अनुबन्ध के अनुरूप किसान को भी फर्म द्वारा बतायी गयी फसल बोकर उसमें खाद, बीज, कीटनाशक दवाईयां तथा खेती करने का वैज्ञानिक तरीका अपनाकर समस्त उत्पाद फर्म को बेचने की बाध्यता होती है। अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत किसान की विपणन जोखिम अनुबन्धित फर्म को झेलनी होती है और इसके बदले में फर्म को इच्छानुसार गुणात्मक कच्चे माल की मात्रा की आपूर्ति प्राप्त हो जाती है।

अनुबन्धित खेती के प्रकार

अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत अधिकांश फर्म स्वयं किसानों से सम्पर्क स्थापित करती हैं। इसमें कुछ उत्पादक फर्म किसानों की फसल तैयारी के समय उत्पादन की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए अनुबन्ध करती हैं। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में जहां खेती

को अधिक संरक्षण प्राप्त है, वहां अधिकांश फर्में पिछड़े क्षेत्रों में अनुबन्धित खेती का ही सहारा लेती हैं। लेकिन ये अनुबन्ध पूर्णतः व्यावसायिक एवं कानूनी रूप लिए होते हैं किन्तु भारत में यह अवधारणा अभी नई है और पूर्णतः विकसित नहीं हुई है क्योंकि यहां किसानों की संख्या एवं भूमि का आकार सीमान्त है इसलिए किसानों को खेती में बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त नहीं हो पाती और खेती करना महंगा पड़ता है। अधिकांश किसान निरक्षर, आर्थिक रूप से कमजोर एवं उनके पास नयी तकनीक का अभाव है। अतः जब उन्हें स्वयं की खेती एवं अनुबन्धित खेती में अन्तर पता चलता है तभी फर्मों के साथ अनुबन्ध करने की सोचते हैं।

अनुबन्ध व्यक्तिगत रूप से किसान अथवा सहकारी समिति बनाकर भी किया जा सकता है। अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत किसान एवं फर्म के बीच अनुबन्ध में सरकार भी कुछ जिम्मेदारी निभा सकती है। अतः अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत कानूनी तौर पर तीन प्रकार के अनुबन्ध हो सकते हैं:–

- एकपक्षीय अनुबन्ध जिसमें केवल विपणन प्रक्रिया को शामिल करते हैं और अनुबन्धित फर्म किसान की उपज को पूर्व निर्धारित मूल्य एवं शर्तों पर खरीदती है जबकि किसान को खेती प्रक्रिया में कोई सलाह अथवा सामग्री प्रदान नहीं की जाती।
- सीमित अनुबन्ध जिसमें फर्म द्वारा किसान को कुछ सामग्री एवं सुविधाएं अनुबन्ध के अनुरूप प्रदान की जाती हैं तथा समस्त उत्पादन पूर्व निर्धारित मूल्य एवं शर्तों के अनुरूप खरीदा जाता है।
- पूर्ण अनुबन्ध जिसमें अनुबन्धित फर्म द्वारा समस्त सामग्री प्रदान की जाती है और प्रबन्ध भी किया जाता है और किसान केवल भूमि, जल एवं श्रम तक ही सीमित रहता है, फर्म द्वारा समस्त उत्पाद भी निर्धारित मूल्य पर खरीदा जाता है।

भारत में अनुबन्धित खेती की शुरुआत सर्वप्रथम हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड द्वारा उत्तर प्रदेश के एटा जिले से 1960 के दशक में डेयरी उद्योग के द्वारा की गई थी। 1990 में नयी राष्ट्रीय कृषि नीति में कृषि के क्षेत्र में अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने पर बल दिया गया ताकि आधुनिकतम तकनीक का भरपूर प्रयोग हो सके। पंजाब में किसानों के साथ होशियारपुर जिले में पेप्सी फूड्स लिमिटेड ने 1989 में टमाटर प्रोसेसिंग प्लांट लगाकर अनुबन्धित खेती की शुरुआत की जिसमें राज्य में 25 हजार हेक्टेयर भूमि पर 50 हजार टन टमाटर की खेती की जा रही है। वर्तमान में कुछ बहुराष्ट्रीय कम्पनियां एवं देशी फर्में भी जैसे हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, पेप्सी, मैकडोनाल्ड, कैडबरी, नैस्ले, विमको, आई0टी0सी0, महेन्द्रा शुभलाभ, रैलिस, अमूल आदि अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत प्रवेश कर गयी हैं। इन कम्पनियों द्वारा किसानों को प्रसार सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं। रैलीस कम्पनी द्वारा किसानों के लिए किसान केन्द्र खोले गए हैं जिसके माध्यम से सभी सुविधाएं प्रदान की गयी हैं। अनुबन्धित कम्पनियों द्वारा प्रदत्त नए–नए बीज एवं खाद, रासायनिक एवं कीटनाशक दवाएं, गहरी जुताई, नई तकनीक तथा बुवाई एवं कटाई के नए–नए तरीकों को अपनाने से किसानों की आय में 40 प्रतिशत तक वृद्धि हुई है। कृषिगत बीजों के उत्पादन व आपूर्ति के व्यवसाय में 150 से भी अधिक कम्पनियां अपना व्यवसाय अनुबन्धित खेती एवं कम्पनियों पर आधारित कर चला रही हैं।

अनुबन्धित खेती की आवश्यकता

हमारे देश में कृषि के क्षेत्र में जोतों का आकार सीमांत–स्तर तक पहुंच गया है। किसानों के पास न तो पर्याप्त मात्रा में साधन है न ही उचित तकनीक। अतः जब वे अपनी उपज को बाजार में लेकर जाते हैं तो न तो लागत की दृष्टि से और न ही गुणवत्ता की दृष्टि से बाजारी प्रतियोगिता में टिक पाते हैं। आज भी अति पिछड़े एवं दूरदराज के क्षेत्र के किसानों तक प्रमाणित खाद एवं बीज, सिंचाई के आधुनिक साधन, खेती में प्रयुक्त होने वाली अत्याधुनिक मशीनें, कृषि क्षेत्र में हो रहे नये–नये आविष्कार, बैंक ऋण की सुविधाएं, उपज की सही विपणन व्यवस्था तथा दिन–प्रतिदिन कृषि क्षेत्र में हो रहे बदलावों की जानकारी उन तक नहीं पहुंच पाती है। दूसरी तरफ कृषि से जुड़ी खाद्य प्रसंस्करण फर्में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण का पूरा फायदा उठाना चाहती हैं अतः कच्चे माल की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए ये फर्में पिछड़े एवं दूरदराज के कृषि क्षेत्र की ओर अपना रूख कर रही हैं और अनुबन्धित खेती के प्रति अपना रुझान दिखा रही हैं। किसान भी कृषि में अनिश्चितताओं से घिरा होने के कारण अनुबन्धित खेती की ओर भाग रहा है क्योंकि उसे समय पर बढ़िया बीज एवं खाद, कम ब्याज दर पर ऋण की उपलब्धता, विपणन की सही एवं उचित व्यवस्था उपलब्ध नहीं हो पाती। अनुबन्धित खेती की आवश्यकता किसानों एवं फर्मों द्वारा इसलिए भी महसूस की जा रही है कि फसल के समय पर बाजार में वस्तु की मांग कम एवं पूर्ति ज्यादा होने से वस्तु के मूल्य गिर जाते हैं क्योंकि छोटे किसानों के पास भण्डारण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है और उन्हें हानि उठानी पड़ती है जबकि फसल का सीजन निकलते ही अनुबन्धित फर्मों को कच्चा माल ऊँचे दामों पर भी आसानी से उपलब्ध नहीं हो पाता और यदि होता भी है तो वह गुणवत्ताविहीन एवं घटिया श्रेणी का होता है। अतः किसानों एवं अनुबन्धित फर्मों दोनों को अनुबन्धित खेती व्यवस्था के अन्तर्गत अपनी समस्या का समाधान मिल जाता है।

अनुबन्धित खेती के फायदे

अनुबन्धित खेती की अवधारणा को लागू करने से किसानों, अनुबन्धित फर्मों, जनता एवं सरकार सभी को लाभ होगा। अतः अनुबन्धित खेती के प्रमुख लाभ निम्न हैं–

- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत उपज में वृद्धि होने से किसानों की आय में निरन्तर वृद्धि।
- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम प्रयोग सम्भव।
- किसानों की कृषि सम्बन्धी जोखिमों से बचाव।

- अनुबन्धित फर्मों द्वारा अच्छे बीज, खाद एवं पद्धतियां प्रयोग करने से गुणवत्तापूर्ण फसल की प्राप्ति।
- अनुबन्धित फर्मों को कच्चे माल की निरन्तर पूर्ति की सुनिश्चितता।
- छोटे एवं सीमान्त किसानों की ऋण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान क्योंकि अनुबन्धित बड़ी फर्मों को ऋण आसानी से सुलभ।
- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र का विस्तार होने से बड़े पैमाने की बचतें प्राप्त हो जाती हैं। परिणामस्वरूप लागतों में कमी आती है जिसका प्रभाव पूरी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है।
- किसानों को फसल का पैसा एकमुश्त मिलने से उनके जीवन–स्तर में सुधार।
- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत किसान अपनी जमीन का अनुबन्ध कर सहायक क्रियाओं में अथवा अन्य कारोबार कर सकता है।
- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत किसान के सम्मुख विपणन एवं मूल्य की समस्या नहीं रहती क्योंकि दोनो बातें अनुबन्ध के समय ही तय हो जाती हैं।
- अनुबन्धित फर्मों द्वारा बड़ा भूभाग होने के कारण खेती जलवायु, क्षेत्र एवं आवश्यकतानुरूप की जाती है जिससे फर्म पूर्ण लाभ उठा लेती हैं और उन्हीं फसलों का अनुबन्ध एवं चयन करती हैं जो भौगोलिक रूप से उपयुक्त हो।
- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत फर्म द्वारा प्रयुक्त बीज, खाद, उत्पादन का स्थान, फसल की प्रजाति एवं तकनीक आदि के बारे में पूर्ण जानकारी रखी जाती है जो अनुसंधान के क्षेत्र में काफी हद तक मदद करती है।
- अनुबन्धित खेती लागू होने से प्रत्येक क्षेत्र में कृषि सहायक उद्योग–धन्धे भी विकसित हो रहे हैं।

अनुबन्धित खेती से नुकसान

अनुबन्धित खेती की परम्परा दिन–प्रतिदिन जोर पकड़ रही है। किसान एवं अनुबन्धित फर्में दोनो को ही वर्तमान में लाभ दिखाई दे रहा है। सरकार का दृष्टिकोण भी बदल रहा है और कृषि सम्बन्धी उदारवादी नीति अपनाकर सरकार अनुबन्धित खेती को प्रोत्साहित कर रही है। अच्छे हाइब्रिड एवं बी0टी0 बीज, खाद, कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग वर्तमान में तो किसानों को उपज बढ़ाने में लाभप्रद लग रहा है किन्तु भविष्य में इसका खामियाजा पूरे देश को भुगतना पड़ेगा। अनुबन्धित खेती के क्षेत्र में बड़ी–बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां एवं औद्योगिक घराने प्रवेश कर रहे हैं और पूरे क्षेत्र की भूमि का अनुबन्ध कर रहे हैं किन्तु कुछ समय पश्चात् पूरी बाजार व्यवस्था पर इन्हीं का नियन्त्रण हो जाएगा और किसान अपने को ठगा महसूस करेगा। अतः अनुबन्धित खेती के प्रमुख नुकसान निम्न प्रकार हैं –

- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत अनुबन्धित फर्मों का प्रमुख उद्देश्य लाभ कमाना रहता है जबकि सामाजिक उद्देश्य नगण्य हो जाता है।
- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत बड़ी–बड़ी अनुबन्धित फर्में छोटी–छोटी रकम देकर सीमान्त व मझोले किसानों की भूमि का अनुबन्ध कर लेती हैं और उस पर कृषि कर उत्पादित माल को अपनी विपणन व्यवस्था के अन्तर्गत महंगे में बेचती हैं। अतः फर्म मनमानी स्थिति में आ जाएंगी और उसका लाभ किसानों को कतई नहीं मिल पाता। परिणामस्वरूप कुछ समय बाद किसान अपनी ही भूमि पर मजदूरी करने को अभिशप्त हो जाता है।
- ऋण में फंसे हुए छोटे किसान जिन्हें खेती घाटे का सौदा लग रही है, मजबूरी में वह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से अनुबन्ध कर रहे हैं और पुनः ऋण के दलदल की गहराई में फंसते जा रहे हैं।
- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत बड़ी फर्में जमीन के अनुबन्ध के बाद उसमें गहन खेती कर अत्यधिक उत्पादन करेंगी। इसके

लिए अत्यधिक रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों का प्रयोग करना आवश्यक है। परिणामस्वरूप भूमि की उर्वराशक्ति घटती चली जाएगी और जैसे ही जमीन की उर्वराशक्ति उसके लाभानुपात से कम होगी और उत्पादन घटने लगेगा तो ये कम्पनियां किसानों से अनुबन्ध समाप्त कर ऊसर जमीन किसानों को सौंपकर चलती बनेगी। तब किसानों के पास न तो खेती करने का जरिया बचेगा और न ही उसके पास रोजगार का अन्य साधन उपलब्ध होगा।

- हमारे देश की कृषि मौसम पर आधारित है जिसमें फसल–चक्र का बहुत महत्व है। फसल चक्र से जमीन की उर्वरा शक्ति बनी रहती है अतः हमारे किसान मौसम आधारित खेती करते हैं जबकि अनुबन्धित फर्में मांग आधारित खेती करती हैं जिसमें फसल चक्र का कोई स्थान नहीं है। गैर–मौसमी खेती से न केवल फसल चक्र गड़बड़ा जाएगा बल्कि खेती का परम्परागत स्वरूप ही बदल जाएगा।
- किसानों द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी संजोये गए बीज निरर्थक साबित होंगे और कुछ जहरीले बीज जैसे बी.टी. बैंगन, गोभी, धान तथा अन्य सब्जियों के बीज बाजार में आ जाएंगे जिसका दुष्परिणाम भारतीय जनता के स्वास्थ्य व पर्यावरण पर भी पड़ेगा।
- अनुबन्धित खेती में किसानों एवं अनुबन्धित कम्पनियों के बीच अनुबन्ध की कानूनी कार्यवाही में भुगतान अथवा माल सुपुर्दगी से सम्बन्धित कानूनी पेचीदगियां भी उत्पन्न होंगी।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अनुबन्ध करने में समस्या आती है क्योंकि बहुत से किसान रूढ़िवादी दृष्टिकोण रखते हैं और वह अनुबन्ध करते समय डरते हैं और यह समझते हैं कि एक बार अनुबन्ध करते ही जमीन कम्पनी की हो जाएंगी क्योंकि वे जमीन से भावनात्मक रूप से जुड़े होते हैं।
- एक क्षेत्र में यदि सभी किसान एक कम्पनी से अनुबन्ध करते हैं तो ठीक है। अन्यथा की स्थिति में कम्पनियों को खेती करना अथवा कराना काफी महंगा होगा और यदि किसान अलग–अलग कम्पनियों से अनुबन्ध करते हैं तो आपसी सामंजस्य में भी दिक्कत होगी।
- यदि उत्पादन का बाजार मूल्य अनुबन्धित मूल्य से ऊँचा रहता है तो किसान अपनी फसल को बाजार में बेच देते हैं और यदि बाजार मूल्य नीचा है तो अन्य किसानों अथवा बाजार से उत्पाद खरीदकर अनुबन्धित फर्म को आपूर्ति कर देते हैं अथवा अनुबन्धित फर्म भी इसका विपरीत कर सकती है अतः अनुबन्ध लागू कराने में काफी दिक्कतें आती हैं।
- भारतीय कृषि वर्षा पर आधारित एवं जोखिम से भरी है। अतः अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत भी ये जोखिम कम नहीं होता।
- अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत उत्पाद का मूल्य अनुबन्धित फर्में तय करती हैं। अतः उनका बाजार मूल्य इतना ऊँचा हो जाता है कि गरीब जनता का शोषण होता है।

अनुबन्धित खेती को यदि सफल बनाना है तो इसके दोषों को दूर करना होगा जिसके लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है। अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत किसान एवं अनुबन्धित फर्मों को उतना भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। यदि दोनों पक्ष सावधानी बरतें तो इसका भरपूर लाभ ले सकते हैं। किसानों एवं अनुबन्धित फर्मों के बीच जो भ्रान्तियां बनी हुई हैं उनके सम्बन्ध में इस बात की जरूरत है कि अनुबन्ध के समय ही वस्तु का मूल्य, गुणवत्ता सम्बन्धित शर्तें, भुगतान का स्वरूप, अनुबन्ध की अवधि एवं पक्षकारों के दायित्व स्पष्ट कर दिए जाए। यदि विस्तार रूप में देखा जाए तो अधिकांश किसान अनुबन्धित खेती के पक्ष में हैं और प्रस्ताव मिलने पर पुरानी फर्मों से ही अनुबन्ध के लिए तैयार हैं इसमें और अधिक सुधार के लिए सरकार द्वारा किसानों के हितों को संरक्षित करना होगा। किसानों एवं अनुबन्धित फर्मों के बीच उठे विवादों को सुलझाने के लिए अनुबन्धित खेती नियामक एजेंसी का गठन करना होगा। किसानों को शोषण से बचाने हेतु सरकार को फसलों का न्यूनतम अथवा अनुबन्धित मूल्य निर्धारित करना होगा और किसानों को दी जाने वाली आधारभूत सुविधाओं का भार अनुबन्धित फर्मों के ऊपर न छोड़कर स्वयं वहन करना चाहिए। देश में आज भी छोटे एवं सीमान्त किसानों की बहुलता है और उनके पास पर्याप्त कृषि सुविधायें भी नहीं हैं। अतः सरकार द्वारा इनके हितों की सुरक्षा की जानी चाहिए।

अनुबन्धित खेती अभी शुरुआती दौर में है और इसके अन्तर्गत काफी सम्भावनाएं मौजूद हैं। अतः ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में इसका पर्याप्त प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए और किसानों की रूढ़िवादी सोच में भी परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। यदि किसान एवं अनुबन्धित फर्में, अनुबन्धित खेती के अन्तर्गत नेकनियति से काम करते हैं तो इससे किसानों, फर्मों, सरकार तथा पूरे देश की जनता को लाभ होगा। बस आवश्यकता इस बात की है कि अनुबन्धित खेती के खतरों को निरन्तर ध्यान में रखा जाएं, कहीं ऐसा न हो जाए कि हम केवल लाभ कमाने के चक्कर में अपनी आने वाली पीढ़ी को उसके अधिकारों से वंचित कर दें। यदि सरकार भी इस ओर थोड़ा ध्यान आकृष्ट कर ले तो अनुबन्धित खेती की अवधारणा देश के विकास में पर्याप्त रूप से सहायक सिद्ध होगी।

(लेखक क्रमशः साहू जैन कालेज नजीबाबाद के वाणिज्य संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर और जनता वैदिक कालेज, बड़ौत (उत्तर प्रदेश) के अर्थशास्त्र विभाग में वरिष्ठ प्रवक्ता हैं।)

मनरेगा-ग्रामीण युवाओं के लिए आशा की किरण

जरा कल्पना करें कि एक ऐसा नेत्रहीन व्यक्ति, जो अपने लिए दो वक्त की रोटी का प्रबंध नहीं कर सकता, अनियमित मजदूर के रूप में खुशी-खुशी कार्य कर रहा है, स्वतंत्र रूप से कमाऊ व्यक्ति बन गया है और अपने गरीब माता-पिता को आर्थिक रूप से मदद कर रहा है।

गांव खतरोडा, ब्लॉक महेन्द्रगढ़ (हरियाणा) का नेत्रहीन विनोद कुमार अब अपनी माता बनारसी के साथ राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम कार्यक्रम के तहत काम कर रहा है। और अब वह अपने परिवार पर बोझ नहीं है बल्कि जीवन का डटकर मुकाबला कर रहा है।

आत्मविश्वास से भरपूर विनोद ने कहा, "मैं किसी भी सक्षम व्यक्ति की भांति काम कर सकता हूं। सभी तरह की दूरियां मेरी अंगुलियों पर हैं तथा अगर मुझे किसी तरह की कठिनाई आती है तो मेरे गांव के लोग खुशी-खुशी उसे दूर करने में मेरी मदद करते हैं।

यह विनोद का दृढ़ संकल्प ही था, जिसने उसे काम करने तथा अन्य लोगों की तरह रहने के लिए प्रेरित किया। ग्राम स्थल पर, जहां जल संरक्षण के लिए तालाब की खुदाई का कार्य चल रहा है, विनोद अपनी माता सहित अन्य मजदूरों के साथ वहां काम करता है। वह कुदाल की मदद से मिट्टी खोदता है तथा कीचड़ को एक तरफ फेंकता है।

उसके दो अन्य भाई विवाहित हैं और स्वतंत्रतापूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। विनोद उनमें से मझौला है और वह एफएम रेडियो सुनने का शौकीन है। जब उनके माता-पिता से यह पूछा गया कि क्या उन्हें अपने नेत्रहीन पुत्र की देख-रेख करने में किसी प्रकार की दिक्कत का सामना करना पड़ता है, तो वे मुस्करा पड़े तथा कहा कि हमें पहले कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था किन्तु अब वह अपने आप सब कुछ कर लेता है। उसके पिता ने आगे कहा कि विनोद को तब काफी बुरा महसूस होता था जब वह रुपये-पैसे या किसी अन्य तरह से परिवार की मदद नहीं कर पाता था। किन्तु मनरेगा के तहत काम पाने के बाद वह काफी संतुष्ट है और इसलिए हम भी संतुष्ट हैं। इस कार्यक्रम ने गांव में उसे तथा अन्य लोगों को आजीविका प्रदान की है।"

विनोद जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा तक ब्रेल भाषा का अध्ययन किया है, केन्द्र सरकार द्वारा मनरेगा कार्यक्रम शुरू करने तथा ग्रामीण लोगों को आत्म-निर्भर बनाने के लिए की गई इस पहल की प्रशंसा करते नहीं थकते। यह पूछने पर कि क्या काम करते समय उन्हें किसी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, विनोद ने गर्व से कहा, "मुझे खुदाई या किसी प्रकार का अन्य शारीरिक श्रम करते समय किसी प्रकार की कोई कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है क्योंकि मैं दूसरों की अपेक्षा बेहतर ढंगे से चीजों को समझ सकता हूं। मुझे तब बेहद खुशी और और आनंद मिलता है जब मैं घर चलाने के लिए अपने कड़ी मेहनत की कमाई अपने माता-पिता को देता हूं।"

ब्लॉक विकास कार्यक्रम अधिकारी दीपक यादव जिनके कार्यक्षेत्र में खतरोड़ा गांव आता है, विनोद के काम से तथा उसके उत्साह को देखकर काफी प्रसन्न है।

(ग्रामीण भारत के सौजन्य से)

लाभदायक है बासमती की खेती

डॉ. यशवीर सिंह शिवे

उत्कृष्ट बासमती फसल के लिए लंबे समय तक रहने वाली धूप और सुनिश्चित जल आपूर्ति की आवश्यकता होती है। यदि फसल ठण्डे तापमान में परिपक्व होती है और वह किसी प्रकार के जैविक तथा अजैविक दबाव से संक्रमित नहीं होती तब बासमती चावल की सुगंध, उसकी पकने और खाने की गुणवत्ता में सुधार होता है। अनुसंधान संस्थानों में विकसित प्रौद्योगिकियों और किसानों के खेत में इन प्रौद्योगिकियों को अपनाए जाने के बीच व्यापक अंतर है। अतः चावल उद्योग के हितों को ध्यान में रखते हुए अनुसंधान प्रौद्योगिकी के बेहतर हस्तांतरण के लिए किसानों के बीच जागरुकता बढ़ाने की आवश्यकता है।

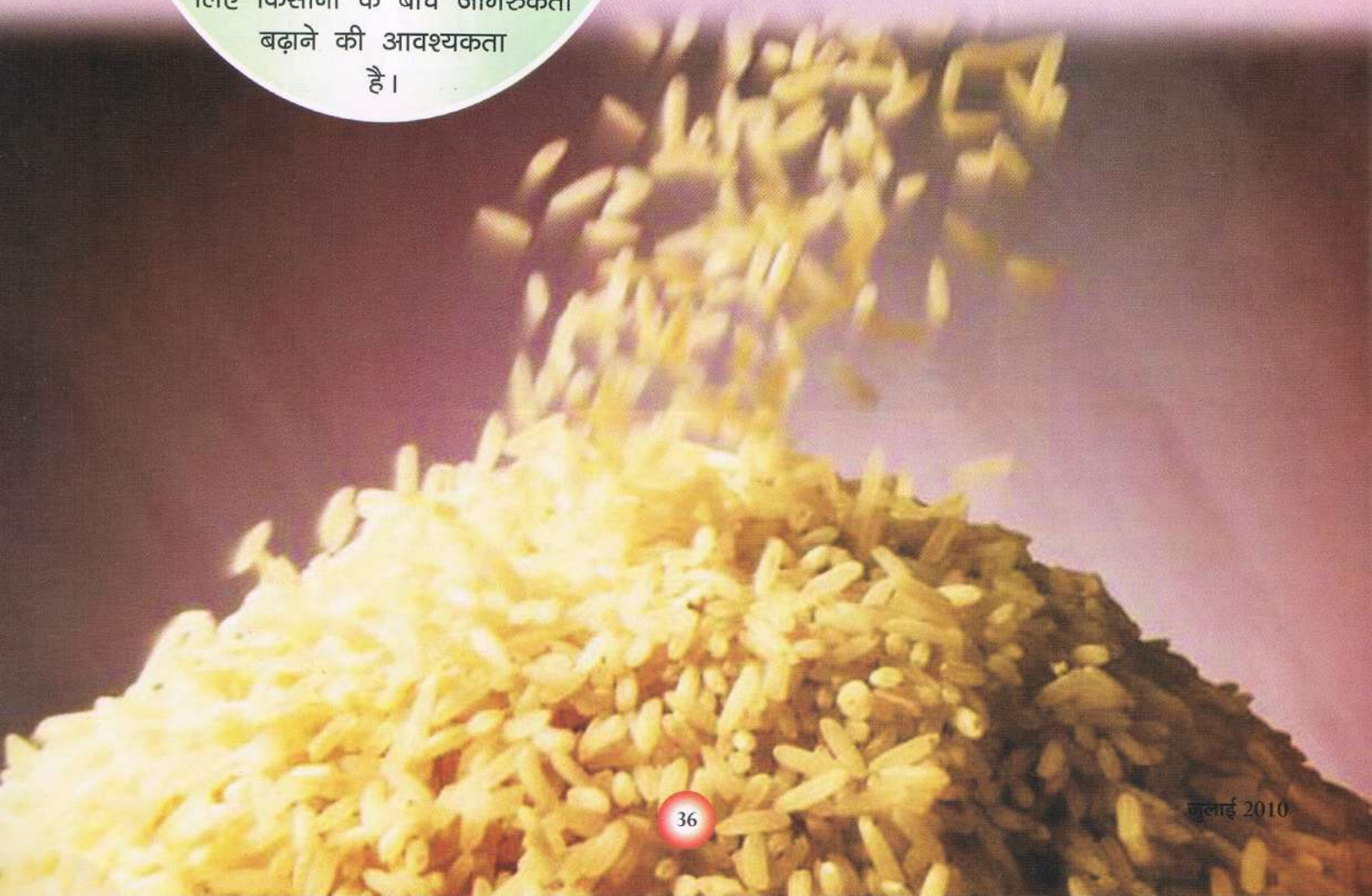

वर्ष 2006–07 के दौरान बासमती चावल का लगभग 1,05,73 हजार टन निर्यात किया गया जिसका कुल मूल्य 2792.81 करोड़ रुपये था। बासमती चावल के अद्वितीय गुणों में अत्यधिक लंबे और मुलायम बनावट वाले दानों के साथ सुगंधित चावल, पकने के बाद लंबाई में दुगुने रूप से बढ़ने और उत्कृष्ट स्वाद शामिल है, जिसकी खेती हिमालय के तराई क्षेत्र में की जाती है। इस प्रकार के चावल की अन्तर्राष्ट्रीय और घरेलू बाजार में अत्यधिक मांग है। इसकी खेती आमतौर पर हरियाणा (करनाल, जींद, अम्बाला, कैथल और कुरुक्षेत्र जिलों), पंजाब (कपूरथला, गुरदासपुर, अमृतसर और पठानकोट जिलों), उत्तराखंड (देहरादून, हरिद्वार और उधमसिंह नगर जिलों) तथा उत्तर प्रदेश (सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, रामपुर तथा पीलीभीत जिलों) में की जाती है। अनुसंधान प्रौद्योगिकियों के बेहतर हस्तांतरण के लिए किसानों के बीच जागरुकता बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

किस्म का चयन

किस्मों की सिफारिश बाजार आधारित मांग, उपभोक्ता की पसंद, इसे पकाने की गुणवत्ता, निर्यातकों/मिल–मालिकों द्वारा की गई सराहना और पादप बचाव की न्यूनतम समस्याओं पर आधारित गुणों को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए लेकिन ऐसा केन्द्र तथा राज्यों द्वारा जारी की गई किस्मों के साथ हमेशा नहीं किया जा रहा। वर्तमान में चावल खेती वाले क्षेत्रों में खरीफ 2007–08 के दौरान 'सुगंधा–4' (पूसा–1121) तथा सी.एस.आर–30 की भागीदारी लगभग 70 प्रतिशत है। तरौरी बासमती,बासमती–386 तथा पूसा बासमती–1 जैसी अन्य किस्मों का भी सुगंधित चावल के निर्यात में उल्लेखनीय योगदान है। इससे भी अधिक 'टाइप–3' (देहरादून बासमती) तथा कस्तूरी किस्मों की भी घरेलू मांग के कारण हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड राज्यों की खेती में उल्लेखनीय भागीदारी है।

बीज तथा उसका उपचार

यदि प्रमाणित बीजों को उपयोग में लाया जाता है तब उत्पादन में 5–7 प्रतिशत की बढ़ोतरी संभव है। दूसरा, इससे उत्पादन गुणवत्ता में भी उल्लेखनीय सुधार आता है। नर्सरी तैयार करने के लिए 15–20 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर पर क्वालिटी बीज पर्याप्त होते हैं। 10 प्रतिशत नमक घोल में डुबोकर भारी बीजों का चुनाव किया जाए। उक्त घोल में खाली, आंशिक रूप से भरे हुए और अस्वस्थ बीज ऊपर पानी में तैरते रहेंगे जिन्हें कि हटा दिया जाए। बीजों को ताजे जल से दो तीन बार धोया जाए अन्यथा इससे अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। चयनित बीजों को 10 कि.ग्रा. बीज मात्रा पर 5 ग्राम इमिसन तथा 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन से उपचारित किया जाए। बाद में बीजों को 24 घण्टे के लिए 10 लीटर पानी में रखा जाए। इससे बीजजनित बीमारियों से बचाव किया जा सकेगा। पुनः भीगे हुए बीजों को जूट के बोरों में 36–48 घण्टे तक उष्मायन के लिए रखा जाए। जब बीजों में अंकुर निकलने लगे तब इन बीजों से बुवाई की जाए।

नर्सरी तैयार करना

वर्तमान खेती प्रणाली के तहत अधिकांश किसानों द्वारा नर्सरी तैयार करने के लिए नमी उपायों को अपनाया जाता है जोकि ठीक है। नर्सरी तैयार करने के लिए मुख्य खेत के दसवें भाग की आवश्यकता होती है। सामान्यतः मिट्टी को चूर्णित करने के लिए दो से चार शुष्क हैरोइंग/हल चलाना पर्याप्त रहता है। नर्सरी के लिए आवश्यक क्षेत्र के आसपास मेढ़ बनाकर भारी सिंचाई की जाए। मिट्टी को दो से तीन बार उलट–पुलट कर गीली जुताई की जाए। खेत में कीचड़ जम जाने के पश्चात् अंकुरित बीजों का एक समान रूप से छिड़काव किया जाए। पहले सप्ताह के दौरान जल प्रबंधन का विशेष ध्यान रखे जाने की आवश्यकता होती है। बीज क्यारी में नमी बनाई रखी जाए और खड़े पानी में ताप संचरण के कारण अंकुरित नवपौधों को

नुकसान से बचाने के लिए दिन के समय खेत में पानी खड़ा न रहने दिया जाए। 12–15 दिनों के पश्चात् हाथ से निराई की आवश्यकता होती है अथवा बुवाई प्रक्रिया समाप्त होने के पश्चात् खरपतवारनाशकों का उपयोग किया जाए।

खेत तैयारी के समय नर्सरी में बेहतर पौष्टिकता प्रदान करने के उद्देश्य से अच्छी तरह से तैयार 5 क्विंटल कम्पोस्ट अथवा 10किग्रा नाइट्रोजन + 5किग्रा P_2O_5 + 5किग्रा K_2O + 2.5 किग्रा $ZnSo_4$ प्रति 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र में उपयोग किया जाए। खड़ी नर्सरी में यूरिया का उपयोग न किया जाए। इसके उपयोग से कोमलता में वृद्धि होगी जिसके कारण मुख्य खेत में पौधों की मृत्युदर बढ़ेगी।

खेत तैयारी

यह मुख्य खेत में पहले बोई गई फसल पर निर्भर करती है। पिछली फसल की कटाई के बाद इनमें सेस्बेनिया प्रजाति (हरी खाद फसल), मूंग/लोबिया (ग्रीष्म फसल) तथा सोरघम/मक्का (चारा), पुदीना, मसूर और गेहूं हो सकती है। खेत में दो शुष्क हैरोइंग करने की आवश्यकता होती है जिससे वर्तमान खरपतवारों और फसल के अवशिष्टों को उखाड़ने में मदद मिलती है। इस प्रयोजन के लिए लेज़र लेवलर एक अच्छा उपकरण है जिसका प्रयोग अब किसानों द्वारा आमतौर पर किया जाता है। इससे सिंचाई प्रभावशीलता बढ़ाने में भी मदद मिलती है। खेत में 5–7 सें.मी. की गहराई तक पानी भर दिया जाए और तब खेत की गीली जुताई कर उस पर ठीक ढंग से एक समान पाटा फेरा जाए। गीली जुताई करने के लिए रोटावेटर का उपयोग करना भी एक अन्य बेहतर विकल्प है जिससे बेहतर प्रदर्शन के साथ–साथ समय की भी बचत होती है। यदि पौधा रोपण से पूर्व हरी खाद फसल को खेत में जलाया गया हो तब रोटावेटर को दो बार चलाना पर्याप्त होता है।

पौध रोपण का समय एवं तरीका

बासमती चावल की उच्च पैदावार और क्वालिटी में पौध–रोपण समय की महत्वपूर्ण भूमिका है। अगेती पौध रोपण से विशेषकर पारंपरिक बासमती किस्मों में अत्यधिक शाकीय वृद्धि होती है जबकि दूसरी ओर पछेती पौध रोपण से फसल में टूटन के उच्च संक्रमण के साथ अपर्याप्त पौध बढ़वार होती है। अतः पारम्परिक बासमती किस्मों (बासमती–386, तरौरी बासमती तथा टाइप–3) और सी.एस.आर.–30 किस्म के पौध रोपण का समय जुलाई के दूसरे पखवाड़े में किया जाना चाहिए। हालांकि विकसित किस्में सुगंधा–4 और पूसा बासमती–1 की रोपाई जुलाई के पहले पखवाड़े में की जानी चाहिए। क्षेत्र विशेष को ध्यान में रखते हुए पंजाब, हरियाणा, उत्तराखंड में रोपाई करते हुए समय सारिणी तैयार करनी चाहिए और अंत में उत्तर प्रदेश में इसका अनुपालन करना चाहिए। बासमती की पछेती रोपाई (अगस्त) से किफायती उत्पादन पैदावार नहीं मिलती। रोपाई में देरी करने से पुष्पगुच्छ प्रति वर्ग मीटर और दाने प्रति पुष्पगुच्छ में भी कमी आती है। हमेशा 20–25 दिन पुराने नवपौध (समग्र प्रति रोपण अवधि) का इस्तेमाल करने से कहीं अधिक दाना पैदावार प्राप्त होती है। किसानों को सलाह दी जाती है कि यदि एक मौसम में दो फसलें उगाई जाएं तब बासमती किस्मों को दूसरी फसल के रूप में न उगाया जाए।

किसानों द्वारा यादृच्छिक पौध रोपण तरीका इस्तेमाल किया जाता है। अतः खेत में आवश्यक पौधा जनसंख्या प्राप्त करने के लिए 30–35 हिल्स/वर्ग मीटर का उपयोग करने की सलाह दी जाती है। अधिकतर किसानों के खेत में 18–20 हिल्स/वर्ग मीटर पौध जनसंख्या देखी जाती है। लेकिन कुछ क्षेत्रों में यह 22–28 हिल्स/वर्ग मीटर दर्ज किया गया। अधिकतम पौध जनसंख्या बनाए रखने पर अधिक जोर दिया जाता है जिससे

नाशीजीवों के हमले को कम करने, 6–7 दिन अगेती परिपक्वता लाने, एक समान दाना भरे जाने तथा हरे दानों की प्रतिशतता कम करने में मदद मिलती है। अनुकूलतम गहराई (2.5–5.0 सें. मी.) से दोज़ी और जड़ बढ़वार में मदद मिलती है। 5–10 सें.मी. की गहराई पर रोपाई करने से दाना पैदावार, पुष्पगुच्छ भार और दाना प्रति पुष्पगुच्छ में कमी आती है। जल के अन्दर नवपौध को निकालने से बैकिने बीमारी का सामना करने में मदद मिलती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

मृदा पर किए गए परीक्षणों के आधार पर उर्वरकों का इस्तेमाल करना बेहतर माना जाता है। अन्यथा लम्बी बासमती किस्मों जैसे 'बासमती–386', 'तरौरी बासमती' और 'टाइप–3' 'सी.एस.आर.–30' के लिए 60 kg N + 50 Kg P_2O_5 + 40 K_2O + 25 Kg $ZnSO_4$ प्रति हैक्टर का उपयोग किया जाए। पूसा बासमती–1 और सुगंधा–4 किस्म के लिए 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हेक्टेयर की अतिरिक्त खुराक मिलाई जाए। रोपाई से पहले पोटाशियम, फास्फेट और जिंक का इस्तेमाल किया जाए और नाइट्रोजन का उपयोग पौध रोपण के 7, 20 तथा 40 दिनों के पश्चात् तीन बराबर भागों में ऊपरी सतह पर किया जाए। मिट्टी में ऊपर से नाइट्रोजन का इस्तेमाल किए जाते समय खेत में पानी खड़ा नहीं रहना चाहिए। बासमती फसल के लिए सेस्बेनिया प्रजाति (लगभग 4–5' ऊंचाई) की हरी खाद और 25 किग्रा $ZnSO_4$ प्रति हेक्टेयर का उपयोग किया जाना पर्याप्त है।

बासमती की पोषक आवश्यकताओं को निर्धारित करते समय मिट्टी का उर्वरता स्तर, फसल चक्र और किस्म के चयन पर सावधानीपूर्वक ध्यान दिया जाए। बासमती चावल में नाइट्रोजन उर्वरकों के अत्यधिक अनुप्रयोग से फसल बीमारियों के प्रति अति संवेदनशील बन जाती है जिससे चावल दाना वसूली की प्रतिशतता में कमी आती है।

खरपतवार नियंत्रण

यदि खेत की अच्छी तरह से गीली जुताई की जाए, सघन पौध रोपण तथा उचित जल समय सारणी तकनीकों का अनुपालन किया जाए तब खरपतवार की कम समस्या सामने आती है। मजदूरों की उपलब्धता के अनुसार रोपाई के 20 और 40 दिनों पर हाथ से निराई की जानी चाहिए, अन्यथा खरपतवार समस्या से निपटने के लिए पौध रोपण के दो दिनों के भीतर अन्य खरपतवार नाशकों जैसे कि बूटाक्लोर–1.5 किग्रा और एनिलोफॉस–0.4 किग्रा और प्रेटीलाक्लोर –0.75 से 1.0 किग्रा का इस्तेमाल किया जाए। खरपतवारों, अन्य धान किस्मों और बैकेने बीमारी से संक्रमित पौधों को अवशिष्ट पहुंचाने के लिए खेत से अवांछित पौधों को उखाड़ना अनिवार्य होता है। इससे बेहतर गुणवत्ता का उत्पाद पैदा करने में मदद मिलती है जिससे बाजार में कहीं ज्यादा मूल्य मिल पाता है।

सिंचाई समय सारणी

गीली जुताई के पश्चात् तैयार की गई नर्सरी में तुलनात्मक रूप से जल की कम आवश्यकता होती है। पहले पखवाड़े के दौरान फसल स्थापना के साथ–साथ मुख्य खेत में खरपतवार नियंत्रण के लिए 5 सें.मी. जल भरा रहना उपयोगी होता है। फसल में दोजियों, पुष्पगुच्छ की शुरूआत होने, पुष्प गुच्छ आविर्भाव और दाना विकास स्थितियों में किसी प्रकार का जल प्रतिबल नहीं होना चाहिए। इससे दाना क्वालिटी, उत्पादन बढ़ाने और टूटन संक्रमण में कमी लाने में मदद मिलती है। जल की कम उपलब्धता वाली स्थिति में खेत में मिट्टी सतह में दरारें आने से पहले सिंचाई की जानी चाहिए जिससे जल की बचत के साथ–साथ पैदावार में होने वाली कमी को भी उल्लेखनीय रूप से कम किया जा सके। खेत में लगातार पानी भरा रहना आवश्यक नहीं है।

पर्णीय काट–छांट

बासमती की लम्बी किस्में बालियां निकलने अथवा/दाना विकास के समय झुक जाती हैं। बासमती के इस प्रकार अवांछित रूप से गिरने के लिए अत्यधिक मात्रा में पोषक तत्वों का उपयोग, जल का अधिक समय तक खेत में भरा रहना और अत्यधिक अगेती पौध रोपण मुख्य कारण है। इसमें फसल के ऊपरी पर्ण की काट–छांट द्वारा कमी लाई जा सकती है अर्थात् पौध रोपण के 45–50 दिन पश्चात् अंतिम पत्ती के कॉलर के ऊपर 10 सें. मी. की कटाई करने से कमी लाई जा सकती है। इससे पत्ती फोल्डर की आवृत्ति में कमी लाने में मदद मिलने के साथ–साथ उत्पादकता में कमी लाए बिना फसल को गिरने से भी बचाया जा सकेगा।

कटाई एवं गहाई

बासमती चावल किस्मों की जैसे ही वे परिपक्व हो जाएं, कटाई की जानी चाहिए। जब भी पुष्पगुच्छ लगभग पक जाएं, उनमें पीला रंग दिखाई देने लगे और पुआल का रंग हरे से पीला दिखाई देने लगे तब कटाई कर दी जानी चाहिए। देरी से की गई कटाई से दानों के अधिक पकने और खेत में दानों में झड़ने की समस्या हो सकती है तथा साथ ही मिलिंग प्रक्रिया के दौरान दानों में टूटन बढ़ सकती है। अधिकतर बासमती फसलों की कटाई दराती द्वारा और उनकी थ्रेशिंग हाथ से पीटकर की जाने वाली प्रक्रिया से की जाती है। हालांकि सीमित रीपर और संशोधित थ्रेशर उपलब्ध हैं। कटी हुई फसल की थ्रेशिंग उसी दिन अथवा कटाई के अगले दिन कर दी जानी चाहिए। थ्रेशिंग में देरी होने से कहीं अधिक टूटन नुकसान और घटा हुआ एच.आर.आर. हो सकता है। अधिक मूल्य प्राप्त करने हेतु उत्पाद को बाजार में भेजने से पहले उचित ढंग से सुखाया और साफ किया जाना चाहिए।

प्रसार एजेन्सियों के लिए महत्वपूर्ण कदम

- निर्यात के लिए सर्वश्रेष्ठ क्वालिटी का चावल प्राप्त करने के लिए किसानों को गुणवत्ता/प्रमाणित बीज की आपूर्ति सुनिश्चित की जाए।
- मिलावटी उत्पादों की कम मानक गुणवत्ता के उपयोग को हतोत्साहित करने के लिए सरकारी नेटवर्क के माध्यम से निवेश विशेषकर नाशकजीवनाशियों की आपूर्ति ।
- बासमती खेती करने वाले किसानों तक अनुमोदित प्रौद्योगिकी की उचित पहुंच ।
- उच्च क्वालिटी के चावल उत्पादन के लिए किसानों के प्रशिक्षण हेतु प्रबंध किया जाना अनिवार्य है।

क्वालिटी चावल उत्पादन को सुनिश्चित करने हेतु पछेती रोपण और नाइट्रोजन की अधिक खुराक का इस्तेमाल करने तथा समस्याग्रस्त मृदा पर बासमती की खेती करने को हतोत्साहित करना।

जैविक उत्पाद

जैविक बासमती चावल खेती के लिए निम्नलिखित प्रमुख बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाए :

- मृदा तथा फसल में सिंथेटिक कृषि उत्पादों का उपयोग नहीं।
- खेत से उत्पन्न तथा प्राकृतिक रूप से उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से पोषक तत्व प्रबंध।
- पादप बचाव उपायों के लिए कृषि नाशकजीवनाशियों और फफूंदनाशियों (घर/फैक्टरी में तैयार) का उपयोग।
- भूमि/उत्पाद तथा मिल/प्रसंस्करण इकाई का प्रमाण ।

वर्तमान में जैविक बासमती की खेती के लिए अच्छी तरह से परीक्षित कृषि तकनीकें उपलब्ध हैं। अतः निर्यात की बढ़ी हुई मांग को देखते हुए वर्तमान खरीफ मौसम में पंजाब, हरियाणा,

उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश राज्य में इस कार्यक्रम के तहत कहीं अधिक क्षेत्र लाया गया है। 'तरौरी बासमती', 'टाइप–3' तथा 'पूसा 1121' आदि किस्में व्यापारियों की प्रमुख पसंद बनी हुई हैं। जैविक तथा वर्तमान (रसायन आदि पर आधारित) दोनों खेती प्रणालियों के बीच बीज उपचार, पोषक तत्व प्रबंध और नाशीजीव नियंत्रण प्रक्रिया में अन्तर है। हालांकि विभिन्न महत्वपूर्ण संवर्धन प्रचालन नीचे दिए गए हैं :

- प्रभावी बीज उपचार के लिए स्यूडोमोनास फ्लोरीसेंस उपलब्ध है।
- पौध रोपण से पहले स्यूडोमोनास फ्लोरीसेंस + ट्राइकोडर्मा हर्जीलेनम द्वारा खेत बंध्याकरण किया जाए।
- हरी खाद (सेस्बेनिया) तथा $ZnSo_4$ के अनुप्रयोग से बासमती फसल को पर्याप्त पोषक पदार्थ प्रदान किए जा रहे हैं। वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग एक अन्य बेहतर विकल्प है।
- रोपाई के अगले दिन खड़े पानी में 4 कि.ग्रा. सरसों का तेल (कच्चा) और 20 कि.ग्रा. शा डस्ट (अच्छी तरह से मिलाने के उपरांत) के एक समान छिड़काव का उपयोग भी धान के लिए किसी अन्य खरपतवारनाशक की तरह एक बेहतर विकल्प है।
- विभिन्न कीटों तथा बीमारियों के विरूद्ध निम्नलिखित उत्पादों का बड़े खेत क्षेत्र में अच्छी तरह से परीक्षण किया गया है।

कीटनाशी जीव

- स्थानीय रूप से उपलब्ध वृक्ष/शाक की पत्तियों के साथ तैयार गाय मूत्र घोल ।
- हरित पानी (स्थानीय रूप से उपलब्ध संघटकों द्वारा तैयार एक खेत उत्पाद) ।
- फेरोमोन ट्रैप/ट्रिको–कार्ड्स (ट्राइकोग्रामा जैपोनिकम)
- ब्यूवेरा का उपयोग (जैविक नियंत्रण)।
- अन्य खेत उत्पन्न उत्पाद जैसे कि लहसुन और मिर्च आदि का घोल ।

बीमारियां

- स्यूडोमोनास फ्लोरीसेंस (बैक्टीरिया पर आधारित)।
- ट्राइकोडर्मा हर्जीलेनम (फंफूद पर आधारित)।
- अन्य यथा केलेमोनास केल्पनोमल तथा केलोपेस्ट।

निष्कर्ष

अनुसंधान संस्थानों में विकसित प्रौद्योगिकियों और किसानों के खेतों में इन प्रौद्योगिकियों का उपयोग किए जाने के बीच व्यापक अन्तराल है। किस्म की पसंद, बीज उपचार, नर्सरी तैयार करना, खेत तैयारी, पौध रोपण का समय तथा तरीका, पोषक तत्व प्रबंध, खरपतवार नियंत्रण, सिंचाई समय सारणी तथा पर्णीय प्रूनिंग आदि कारकों का उत्पादन पर भरपूर प्रभाव पड़ता है। अतः चावल उद्योग के हितों को ध्यान में रखते हुएं अनुसंधान प्रौद्योगिकियों के बेहतर हस्तांतरण हेतु किसानों के बीच जागरुकता सृजित किए जाने की आवश्यकता है।

(लेखक भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली के सस्य विज्ञान संभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं।)

ई–मेल : ysshivay@hotmail.com

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो (Krutidev 010 CD में) और उसके साथ ई–मेल तथा मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। **कुरुक्षेत्र** में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख वरिष्ठ संपादक, **कुरुक्षेत्र** कमरा नं. 655, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

रोगनिवारक गुणों से भरपूर गूलर

जगनारायण

मीठा, मधुर और स्वादिष्ट होने के साथ ही गूलर का फल सेहत के लिए उपयोगी और रोगनिवारक गुणों से भरपूर होता है। गूलर का फल ठण्डक देने वाला होता है। ग्रीष्म ऋतु में इसका सेवन तापजनिक विकार में उपयोगी रहता है। इसके दो-तीन पके फल को नियमित दबाकर खाने या पीस कर उसका शर्बत बनाकर लेने से शरीर की जलन मिट जाती है जिससे ताप और लू से निजात मिल जाती है।

भारत उपमहाद्वीप के समस्त मैदानी एवं पठारी भागों में बहुलता से पाया जाने वाला गूलर एक सर्वसुलभ फल है। गूलर का फल अत्यन्त प्रभावकारी, रोगनिवारक और उपयोगी होता है। वेदों में भी इसकी चर्चा हुई है। इसकी गुणकारी विशेषताओं को जनसामान्य के बीच ले जाकर परेशान लोगों को राहत पहुंचाई जा सकती है।

गूलर का वृक्ष मनुष्यों के अलावा दुधारु पशुओं के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। गूलर का वृक्ष 50 फीट तक ऊंचा होता है। गूलर का वृक्ष जल्दी बढ़ने के साथ ही लम्बी आयु वाला टिकाऊ भी होता है। इसकी पत्तियां तीन से चार इंच लम्बी, नुकीली, भालादार होती हैं। इसकी पत्तियों पर उभरी हुई तीन शिराएं पायी जाती हैं। गूलर के फूल दिखाई नहीं पड़ते, इसलिए इसे 'अपुष्पा' कहते हैं। इसका फल शुरु में हरे रंग का होता है, जो पकने पर लाल रंग का हो जाता है। गूलर के फल के अन्दर सूक्ष्म जन्तु पाए जाते हैं। यह वर्ष में कई बार फलता है। इसके फल, छाल, पत्ते, जड़ और दूध में रोगनिवारक क्षमताएं पाई जाती हैं।

गूलर में पाए जाने वाले रासायनिक तत्व

गूलर के फल में 13.6 प्रतिशत नमी, 7.4 प्रतिशत अलब्युमिनायड, 5.6 प्रतिशत वसा, 49 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 8.5 प्रतिशत रंजक द्रव्य, 17.9 प्रतिशत रेशा, 6.5 राख, 0.25 प्रतिशत सिलिका तथा 0.91 प्रतिशत फास्फोरस पाया जाता है। इसकी छाल में 14 प्रतिशत टेनिन, दूध में 4 से 7 प्रतिशत रबड़ पाया जाता है।

मीठा, मधुर और स्वादिष्ट होने के साथ ही गूलर का फल सेहत के लिए उपयोगी और रोगनिवारक गुणों से भरपूर होता है। गूलर का फल ठण्डक देने वाला होता है। ग्रीष्म ऋतु में इसका सेवन तापजनिक विकार में उपयोगी रहता है। इसके दो–तीन पके फल को नियमित चबाकर खाने या पीस कर उसका शर्बत बनाकर लेने से शरीर की जलन मिट जाती है जिससे ताप और लू से निजात मिल जाती है।

गूलर की प्रकृति

गूलर का स्वाद कसैला होता है। गुण में यह रुखा (रूक्ष) होता है। यह विपाक में कटु तथा वीर्य में शीतल होता है।

रोगनिवारण में गूलर की उपयोगिता

रक्तस्राव, नकसीर, रक्त पित्त, रक्त प्रदर, खूनी बवासीर में पके गूलर के फल से निकाले गये रस में 20 ग्राम शहद या गुड़ मिलाकर लेने से लाभ होता है।मधुमेह में प्रतिदिन कच्चे गूलर की सब्जी खाना लाभकारी होता है। पुंसत्व और यौन शक्ति की कमी में गूलर के फल का प्रयोग लाभकारी रहता है।

धातु क्षीणता में गूलर का फल अत्यन्त उपयोगी है। इसके लिए गूलर के फल को सुखाकर उसका चूर्ण कर लेना चाहिए। इस चूर्ण के साथ ही बिदारी कन्द के चूर्ण को मिलाकर, 5 ग्राम की मात्रा लेकर सुबह–शाम दो चम्मच घी मिले दूध के साथ प्रयोग करना चाहिए।

शीघ्र पतन की शिकायत में एक–दो पके गूलर का फल रोज खाना चाहिए। यदि पके फल न मिले तो इसके पकने के मौसम में इसको संगृहीत कर सुखाने के बाद चूर्ण कर लेना चाहिए। इसमें समान मात्रा में मिश्री का चूर्ण भी मिला लेना चाहिए। इसकी 10 से 15 ग्राम मात्रा को सुबह–शाम दूध के साथ लेना चाहिए। इससे स्थम्भन शक्ति बढ़ती है तथा शीघ्रपतन की शिकायत दूर हो जाती है।

गूलर के दूध को बताशे में डालकर सुबह–शाम दोनों वक्त लेकर ऊपर से दूध पीने से धातु क्षीणता दूर हो जाती है। धातु क्षीणता में आधे चम्मच गूलर को मिश्री मिले दूध में मिलाकर पीने से समस्या से मुक्ति मिल जाती है और धातु पुष्ट होता है।

मुख, दांत और मसूड़ों के कष्ट में गूलर की छाल और पत्तों के काढ़े से कुल्ला करने और कुछ समय तक मुंह में रखकर कुलकुलाने से मुख के छाले, मसूड़ों की सूजन और खून आने के साथ दांत हिलने की शिकायत से निजात मिल जाती है। योनि विकार में गूलर की छाल के काढ़े से धुलाई से आराम मिलता है।

जब आंखे लाल हो जाएं, आंखों से पानी आए, तथा आंखों में जलन हो, तब गूलर के पत्तों को लेकर उसका काढ़ा बनाकर उसे तीन–चार पर्त वाले साफ कपड़े से छान कर किसी उपयुक्त पात्र में एकत्र कर लें। पुनः ठण्डा होने पर दो–दो बूंद दिन में तीन–चार बार आंख में डाले। इससे आंखों की बीमारियों का शमन होता है और आंख की रोशनी बढ़ जाती है।

मधुमेह रोग में गूलर की मुलायम पत्तियों के रस को निकाल कर 20 मिलीलीटर शहद मिलाकर दिन में तीन–चार बार चाटने से पेशाब अधिक होने की प्रक्रिया रूक जाती है तथा पेशाब में शर्करा का आना धीरे–धीरे कम होने लगता है।

रक्तस्राव में गूलर का फल अत्यन्त उपयोगी है। नकसीर, खूनी आंव और खूनी बवासीर में गूलर का फल अत्यन्त लाभकारी रहता है। इसके पके फल से बने चूर्ण में मिश्री मिलाकर 10 ग्राम सुबह–शाम ताजे पानी से लेने से राहत मिलती है।

बार–बार होने वाले दस्त के लिए गूलर की पत्तियों का क्वाथ अत्यंत लाभकारी औषधि है। इसके लिए 15 ग्राम गूलर के पत्तों को 250 ग्राम पानी में उबालने पर जब चौथाई पानी बचे तो इस जल को दो भाग करके सुबह–शाम तीन–चार दिन के सेवन से पतले दस्त और आंव वाले दस्त से राहत मिल जाती है। जब शरीर के किसी भाग की त्वचा जल जाए तब वहां गूलर के पेड़ की छाल को पीसकर जले स्थान पर लेपन करना चाहिए। इससे चमड़ी की जलन से आराम मिलता है तथा छाले और घाव जल्दी ठीक हो जाते हैं। तेज बुखार में शरीर की त्वचा पर गूलर की छाल को पीसकर उसका लेपन लाभकारी होता है। बच्चों के दस्त और दांत निकलने से होने वाली परेशानी में गूलर का दूध लाभ पहुंचाता है।

यह कफ और पित्त को सन्तुलित रखता है। यह चमड़ी के रंग को निखारने का काम करता है। यह सभी प्रकार की जलन को शांत करने वाला, दर्द में राहत दिलाने वाला तथा घाव को स्वच्छ कर भर देने वाला होता है। इसके सेवन से शुक्र, उदर एवं रक्त विकार से मुक्ति मिलती है। टूटी हुई हड्डियां जुड़ जाती हैं।

आयुर्वेद में गूलर के विषय में कहा गया है –

औदुम्बरं कषायं स्यात् पववतुं मधुरं हिमम्।
कृमिकृत रक्तपित्तृघ्न मूर्छादाह तृषापहम्।।

अर्थात् गूलर का कच्चा फल कसैला और दाह में मुक्तिकारक होता है। इसका पका फल मीठा, शीतल, रुचिकारक, पित्तशामक, थकावट हरने वाला, जलतृष्णा को शान्त करने वाला, कब्जनाशक तथा पुष्टिकारक होता है। यह रक्तपित्त का शामक तथा मूर्च्छा को दूर करता है।

विभिन्न क्षेत्रों में गूलर के नाम

वटादि कुल के वृक्ष गूलर को देश के अलग–अलग हिस्सों में कई अलग–अलग नामों से पुकारा जाता है जिनमें से कुछ के विवरण इस प्रकार है – गूलर को संस्कृत में उदुम्बर, जन्तुफल, यज्ञांग, हेमदुग्ध आदि नामों से जाना जाता है। बंगाल में इसे यज्ञडुम्बर, महाराष्ट्र में उम्बर, गुजरात में उम्बारो, तमिलनाडु में मल, कर्नाटक में अति, तेलुगू में अन्ति, उड़ीसा में डिमरी, आन्ध्र प्रदेश में जम्मैज कहते हैं। फारसी में अंजीरे आजम या अंजीरे अहमक कहते हैं। अंग्रेजी में इसे कलस्टर किंग कहते हैं। इसका लैटिन नाम फाइकस ग्लोमरेरा है।

गूलर के अन्य लाभकारी उपयोग

पर्यावरणीय दृष्टि से गूलर का वृक्ष अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण होता है। यह आसानी से उगता है। अनेक अवसरों पर देखा गया है कि गूलर का वृक्ष जतन से रोपित अन्य वृक्षों की तुलना में बिना रोपड़ के ही लावारिस हालत में अपने आप उगकर तेजी से बढ़कर बहुत जल्द ही विकसित होकर छाया देने लगता है। पर्यावरणीय दृष्टि से गूलर का एक वृक्ष अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि यह कंकरीली, पथरीली जमीन पर भी उग जाता है और इसे खाद, पानी और देखभाल की कोई जरूरत नहीं पड़ती।

इसके कच्चे और पके फल को विभिन्न रूप में खाने के लिए प्रयोग होता है। इसके पके फल के साथ ही कच्चे फल को सब्जी, चोखा बनाकर खाया जाता है। इसका कच्चा फल पेट साफ करने वाला, लौह तत्वों की बहुलता वाला है जिससे महिलाओं के अनेक रोगों में इसे घरेलू उपचार में प्रयोग किया जाता है। इसके गिरे हुए पके फल और पत्तों को खाने वाले दुधारु पशुओं के दूध में बढ़ोतरी हो जाती है। इसकी पत्तियों को पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके पेड़ की लकड़ी अत्यन्त मुलायम होती है। गूलर की लकड़ी की मुलायमियत के चलते इससे कलात्मक खिलौनों का निर्माण किया जाता है जिसके कारण काष्ठ के खिलौने के निर्माण क्षेत्र में इसकी लकड़ी की अच्छी मांग रहती है। इसकी पत्तियों से उत्तम श्रेणी की कम्पोस्ट खाद बनती है।

उपेक्षित गूलर

भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों में अपने आप आसानी से उगने वाला गूलर का बहूपयोगी वृक्ष भारत में अत्यन्त उपेक्षित स्थिति में है। औषधीय उपयोगिताओं के बावजूद इसके रोगनिवारक गुणों से पीड़ित लोगों को लाभ पहुंचाने के लिए आयुर्वेद तथा अन्य स्थानीय चिकित्सा पद्धतियों में इस पर ध्यान देकर शोध के माध्यम से इसके गुणकारी पक्ष से पीड़ितों को लाभ पहुंचाने का कोई सुनियोजित प्रयास नहीं हो रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि गूलर जैसे सर्वसुलभ वृक्ष पर व्यापक रूप से शोध कर जन सामान्य को इसके गुणों और उपयोगिताओं से परिचित कराया जाए ताकि ग्रामीण और वनवादी अंचल के निर्धन लोगों द्वारा इस सर्वसुलभ वृक्ष के उपयोगी तत्वों का रोगोपचार में प्रयोग किया जा सके।

(लेखक ग्रामीण विकास को समर्पित सामाजिक संस्थान लोकोत्थान समिति वाराणसी में सचिव हैं।)

पाठकों / लेखकों से अनुरोध

आप "कुरुक्षेत्र" पत्रिका के नियमित पाठक/लेखक हैं तो आप जरूर चाहेंगे कि आपके गांव या उसके आसपास आ रहे बदलाव के बारे में सभी लोगों को पता चले। आपके गांव या आसपास जरूर ऐसी कोई महिला/पुरुष या स्वयंसेवी संस्था होगी जिसके बूते पर बदलाव की ब्यार चली हो। सरकारी प्रयासों के चलते भी आपके गांव का कुछ कायापलट तो हुआ ही होगा।

अगर आपके पास ऐसी कोई भी जानकारी है तो आप उसे अपने शब्दों में लिखकर (फोटो सहित) भेजें। लेख छपने पर उसका उचित पारिश्रमिक भी दिया जाएगा। हमारा पता है – वरिष्ठ संपादक, कुरूक्षेत्र (हिंदी), कमरा नं. 655, 'ए' विंग, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110001, आप हमें लेख ई–मेल भी कर सकते हैं।

ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

पथरीली जमीन पर करिश्मा कर दिखाया एक किसान ने

वीरेन्द्र परिहार

रेगिस्तान में नखलिस्तान बनाने वाले विरले ही होते हैं। 'जहां चाह वहां राह' वाली कहावत हकीकत में तब ही साकार होती है जब आदमी संकल्पित होकर कार्य करता है। मलेशिया के जंगलों में पैदा होने वाले रबर के पेड़ यदि कोई मारवाड़ की गर्म जलवायु में पैदा कर दिखा दे तो इससे बड़ा कोई कारनामा हो नहीं सकता। मारवाड़ के एक किसान और पेशे से वैद्य गोपीकृष्ण परिहार ने बंजर भूमि को उपजाऊ बनाकर रबर के पेड़ों के साथ दर्जनों औषधीय पौधे लगाकर एक अनूठा कारनामा कर दिखाया है।

मारवाड़ में जहां गर्म जलवायु के कारण कपास, मिर्च व जीरे की खेती करना भी मुश्किल है, वहां औषधीय पौधों की खेती करना एक दुर्गम काम है। मारवाड़ के इस सफल किसान वैद्य गोपीकृष्ण परिहार ने बंजर भूमि पर 'खोदा पहाड़ और निकली चुहिया' वाली कहावत को गलत सिद्ध कर दिया। अपनी खून–पसीने की मेहनत से बंजर भूमि पर चमत्कार कर दिखाया। आइए जानते है ऐसे चमत्कारिक और करिश्मावादी व्यक्ति की सफलता की कहानी उन्हीं की जुबानी।

"मेरा जन्म 18 अक्टूबर, 1945 को जोधपुर के एक छोटे से गांव बिराई में हुआ। पांचवीं तक की शिक्षा मैंने बिराई की ही प्राथमिक पाठशाला में प्राप्त की। वर्ष 1967 में मैंने सैकण्डरी और 1968 में हायर सैकण्डरी परीक्षा पास की। जीवन में शुरू से ही कुछ विशेष करने की तमन्ना थी। हर पल कुछ नया करने की सोचता रहता था।

मेरी जिंदगी भी आम किसान की ही तरह गरीबी में कट रही थी। मेरे पास न तो एक बीघा जमीन थी और न ही कोई खेती का साधन। मैंने एक योजना बनाकर बिराई से जोधपुर जाने वाले मार्ग के पास पहाड़ी की ढलान में आई करीब पन्द्रह बीघा पथरीली जमीन को बरसों तक मेहनत कर खेती लायक बनाया। इस पन्द्रह बीघा जमीन को मैंने बड़े–बड़े पत्थरों से मुक्त कर दिया। शुरुआती दौर में मैंने इस जमीन पर मेंहू, जीरा, रायड़ा जैसी सामान्य फसलों के साथ–साथ सब्जियों की खेती की। इस जमीन पर अपनी खून–पसीने की मेहनत के साथ मैंने नित नए प्रयोग किए। मेरी जी–तोड़ मेहनत के साथ किस्मत ने पूरा साथ दिया और पहले ही दौर में इस बंजर और पथरीली जमीन पर विभिन्न रंगों के गुलाब के फूल उग आए। जोधपुर से उद्यान अधिकारियों के सम्पर्क में आकर मैंने कई राष्ट्रीय प्रशिक्षणों में भाग लेना शुरु किया। अपने जीवन में औषधीय पौध उगाने का सपना संजोए रखा था। गुलाब के फूल अपनी जमीन पर उगे हुए देखकर मेरा हौंसला बढ़ गया। एक प्रशिक्षण से लौटते हुए देहरादून से एक रबर का पौधा लाया और उसे खेत में रोप दिया। आज उसने एक विशाल रूप ले लिया है। विभिन्न प्रदेशों की नर्सरियों से सीख लेकर मैंने अनेक प्रकार के औषधीय पौधे पनपा दिए। केरल से मैंने काली मिर्च की पौध लाकर लगायी जिसके बेहतर परिणाम सामने आए।

धनवन्तरि उद्यान – औषधीय पौधों के इस उद्यान का नाम है 'धनवन्तरि उद्यान'। आज इस उद्यान में सागवान, रबर, कालीमिर्च, पलाश, श्यामतुलसी, गूलर, सर्पगन्धा, अश्वगंधा, ग्वारपाठा, मालकांगणी, चंपा, फुअर, अनार, बादाम, संतरा जैसे दर्जनों औषधीय और फलदार पौधे उग चुके हैं। मेरे इस उद्यान के बेर तो कई राष्ट्रीय प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

प्रयोग बूंद–बूंद सिंचाई का – मैंने इस उद्यान को पनपाने में बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति का ही उपयोग किया ताकि कम पानी से पौधे की जरूरत के मुताबिक सिंचाई हो सके। इस उद्यान में मैंने जैविक खाद का प्रयोग किया।

कड़ी मेहनत और लगन से मैंने इस उबड़–खाबड़, कंकरीली और पथरीली जमीन को कृषि योग्य बना दिया।

अभूतपूर्व बेर उत्पादन – बागवानी के प्रति प्रेरित होकर मैंने मरू विकास योजना के अर्न्तगत गोला किस्म के बेर के पौधे लगाए। उद्यान विभाग ने कलस्टर योजना के तहत 100 पौधे बेर के सेव और गोला किस्म के लगाए। देखते ही देखते मेरे उद्यान के बेर का उत्पादन बढ़ गया। मुझे अपनी मेहनत से जो बेर का अप्रत्याशित फायदा हुआ, उसकी कल्पना भी नहीं की थी। बेर की फसल तीन माह की अवधि में पककर तैयार हो गई। प्रत्येक पेड़ पर 80 किलो के हिसाब से 160 क्विंटल बेर का उत्पादन हुआ। बेर का उत्पादन देखने कई समीपवर्ती किसान आने लगे। देखते ही देखते मेरा बेर का उद्यान सभी के आकर्षण का केन्द्र बन गया। बेर के उत्पादन से मुझे तीन माह की अवधि में करीब सवा लाख रुपये की आय हुई। इसमें से तीस से चालीस हजार रुपये सिंचाई, खाद व सुरक्षा पर खर्च करने के बाद भी सत्तर हजार रुपये की शुद्ध बचत हो गई। मैंने अपनी 21 बीघा भूमि में से 10 बीघा जमीन पर बेर और शेष 10 बीघा पर अनार, नींबू, चीकू, करौंदा, गूदां, शहतूत, सागवान, रोहिड़ा के पौधे लगाए।

बेर पर पुरस्कार

- 1991 में जोधपुर में आयोजित जिला स्तरीय फल–सब्जी के प्रदर्शनों में वैद्य के बेर को प्रथम पुरस्कार।
- 1992 में राष्ट्रीय उद्यान मेला नई दिल्ली में आयोजित फल प्रदर्शनी में वैद्य जी के बेर को एक साथ तीन पुरस्कार।
- 1993 में हरियाणा के कैथल में आयोजित बेर प्रदर्शनी में प्रथम पुरस्कार।
- 1994 में चंडीगढ़ में आयोजित राष्ट्रीय बेर प्रदर्शनी में प्रथम पुरस्कार।
- 1995 में जयपुर में आयोजित राज्यस्तरीय फल प्रदर्शनी में प्रथम पुरस्कार।
- 2000 में अखिल भारतीय बेर प्रदर्शनी में पुनः प्रथम पुरस्कार।

बंजर भूमि पर सुन्दर उद्यान सुशोभित करना वास्तव में किसी भागीरथी प्रयास से कम नहीं है। मुझे मेरी इस कामयाबी के लिए अब तक कुल 80 पुरस्कार मिल चुके हैं जिसमें से 60 बेर पर मिले हैं।

मैंने 1971 से 1978 के बीच निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली से आयुर्वेदाचार्य की उपाधि प्राप्त की।

अन्य पुरस्कार

- फरवरी 2010 में विज्ञान भवन, नई दिल्ली में कृषि मंत्री, भारत सरकार श्री शरद पवार के करकमलों से हार्वेस्ट ऑफ होप पुरस्कार से सम्मानित।
- मार्च 2010 में राज्यस्तरीय कृषक सम्मान समारोह में मुख्यमंत्री अशोक गहलोत द्वारा सम्मानित।
- 2002 में गणतंत्र दिवस पर जोधपुर जिला प्रशासन द्वारा तत्कालीन ऊर्जा मंत्री डॉ. चन्द्रभान द्वारा सम्मानित।
- 1998 में महात्मा ज्योतिबा फुले सैनी मैमोरियल ट्रस्ट ऑफ इण्डिया दिल्ली में सम्मानित।
- 1994 में नागौर में आयोजित राजस्थान वैद्य सम्मान के प्रांतीय अधिवेशन में सम्मानित।
- 2001 में सालासर में आयोजित राजस्थान वैद्य सम्मेलन के प्रांतीय अधिवेशन में आयुर्वेद मंत्री द्वारा आयुर्वेद की उपाधि प्राप्त।
- 2002 में किसान दिवस पर कृषि विभाग जोधपुर द्वारा किसान सम्मान से विभूषित।

कर्मयोगी वैद्य गोपीकृष्ण परिहार ने धनवन्तरि उद्यान विकसित करके पर्यावरण प्रेमियों के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। परिहार के इस उद्यान को देखने कई विशेषज्ञ, प्रकृति प्रेमी और किसान आते हैं। हाल ही में फरवरी 2010 में भारत के प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक और हरित क्रान्ति के जन्मदाता प्रो. एम.एस. स्वामीनाथन ने इनके धनवन्तरि उद्यान का अवलोकन किया और वैद्य जी को सम्मानित किया।

आज वैद्य गोपीकृष्ण परिहार की बहुमुखी प्रतिभा को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। ये जाने–माने वैद्य ही नहीं है अपितु राष्ट्रीय पहचान रखने वाले फल उत्पादक किसान भी है। इन्होंने अपनी प्रतिभा का लोहा हर जगह मनवाया। वे जहां भी अपने द्वारा तैयार किए गए फलों को लेकर गए, उन्होंने वहां ढेरों पुरस्कार अपनी झोली में डाल दिए।

'रंग लाती है हिना पत्थर पर घिस जाने के बाद' यह कहावत बिराई के वैद्य गोपीकृष्ण परिहार पर पूरी तरह चरितार्थ होती है। कितनी दिलचस्प बात है कि देखते ही देखते अपनी मेहनत से वैद्य पंडित से उद्यान पंडित बन गया।

गोपीकृष्ण परिहार की इस सफलता की यात्रा में जो शख्स हर जगह इनके साथ रहा और हर मुकाम पर इनका भागीदार

बना, वो है इनका पुत्र युवा, कर्मठ और पेशे से वैद्य खिंवराज परिहार। युवा सफल किसान खिंवराज परिहार ने देश की कई शीर्षस्थ संस्थाओं से औषधीय पौधों पर प्रशिक्षण प्राप्त किया।

धनवन्तरि उद्यान, जो आज विकसित अवस्था में है, उसके पीछे खिंवराज परिहार की ही खून–पसीने की मेहनत छिपी हुई है। बहुत कम आयु में ही वैद्य खिंवराज परिहार को ढेरों पुरस्कार और सम्मान बागवानी में कीर्तिमान स्थापित करने के लिए मिल चुके हैं।

समाज सेवा की ललक रखने वाले वैद्य खिंवराज परिहार हर सामाजिक मदद में तैयार खड़े रहते हैं। इनकी अद्‌भुत समाज सेवा के लिए इन्हें कई बार पुरस्कार दिया जा चुका है।

पिता–पुत्र की यह सफलता की कहानी निश्चित ही एक आदर्श कहानी है जिससे हमारे प्रदेश के उद्यमी किसान प्रेरणा प्राप्त करेंगे और बागवानी में नया आयाम स्थापित करेंगे।

(लेखक दूरदर्शन कृषि कार्यक्रम में प्रोडक्शन सहायक हैं।)
ई–मेल : virandrapariharddk@rediffmail.com

हमारे आगामी अंक

अगस्त, 2010 – गांवों में बुनियादी सुविधाएं

सितंबर, 2010 – गांवों में शिक्षा

इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास, कृषि, रोजगार व स्वास्थ्य से संबंधित लेख भी इनमें शामिल किए जाएंगे। उपरोक्त विषयों पर सारगर्भित लेख (आम बोलचाल की भाषा में) व फोटो हमें भेजे जा सकते हैं। पत्रिका के प्रकाशन की तिथि आगामी माह से तीस दिन पूर्व होती है। अतः प्रकाशन सामग्री कम से कम 45 दिन पूर्व हमें मिल जानी चाहिए ।

प्रकाशन विभाग की प्रशासनिक सेवाओं पर पुस्तकें

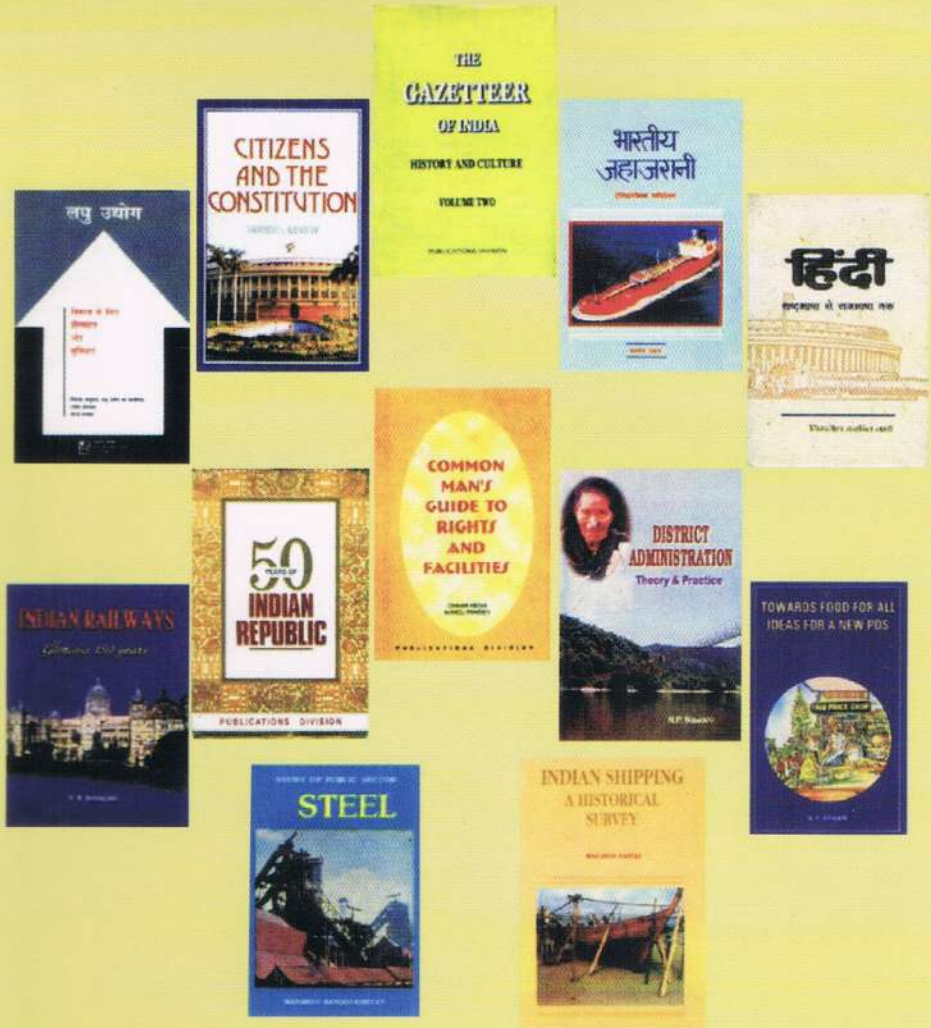

<u>हमारे विक्रय केंद्र:</u>

नई दिल्ली (फोन 24365610, 24367260) दिल्ली (फोन 23890205) कोलकाता (फोन 22488030) नवी मुम्बई (फोन 27570686) चेन्नई (फोन 24917673) तिरुअनंतपुरम (फोन 2330650) हैदराबाद (फोन 24605383) बेंगलूरु (फोन 25537244) पटना (फोन 2683407) लखनऊ (फोन 2325455) गोवाहाटी (फोन 26656090) अहमदाबाद (फोन 26588669)

ज्यादा जानकारी के लिए हमारी वेबसाइट देखें – www.publicationsdivision.nic.in
e-mail – dpd@sb.nic.in, dpd@hub.nic.in

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

आर. एन. आई./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)–05/3164/2009–11
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)–55/2009–11

R.N.I./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2009-11
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2009-11
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, अपर महानिदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : वरिष्ठ संपादक : कैलाश चन्द मीना